

# जैनहितैषी ।

नवम्बर १९१७ ।

## विषय सूची ।

१ ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति । ले० बाबू सूरजभान वकील	...	४६९
४ विचित्र व्याह (काव्य) । ले०, पं० रामचरित उपाध्याय	...	४८७
३ विद्वज्जन खोज करें । ले०-बाबू जुगलकिशोर सुखतार	...	४९१
४ नौकरोंसे पूजन कराना । ले०-बाबू जुगलकिशोर सुखतार	...	४९५
५ जैनसमाजके क्षयरोग पर एक दृष्टि । ले०-बाबू रतनलाल जैन बी. ए. एल. एल. बी.	...	४९८
६ अदिपुराणका अवलोकन । ले०-बाबू सूरजभान वकील	...	५०३
७ सतयुगकी वेश्यायें ।	...	५०७
८ अलंकारोंसे देवी-देवताओंकी उत्पत्ति । ले०-बाबू सूरजभान वकील	...	५०९
९ पुस्तक-परिचय	...	५१४

## नई जैन पुस्तकें ।

ग्रन्थपरीक्षा प्रथम भाग मूल्य ॥, द्वितीयभाग मू० ॥२॥, दर्शनसार विवेचनासहित मू० ॥३॥, मोक्षमार्गकी कहानियाँ मू० ॥४॥, बच्चोंके सुधारनेके उपाय मू० ॥५॥, सन्तानपालन ॥६॥, सर्वार्थविद्धि मूल संस्कृत २॥, बुधजन सतसई ॥७॥, आचारसार (आचार्य वीरनन्दिकृत) माणिकचन्द्र जैनग्रन्थमालाका ग्यारहवाँ ग्रन्थ, मूल्य० ॥८॥

मैनेजर, जैनग्रन्थरत्न कार्यालय,  
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई ।

संपादक—नाथूराम प्रेमी ।

संयोजक—शिव प्रेम ।

## प्रार्थनायें ।

1. जैन-हितैषी किसी स्वार्थबुद्धिसे प्रेरित होकर निजी लाभके लिए नहीं निकाला जाता है। इसमें जो समय और शक्तिका व्यय किया जाता है वह केवल अच्छे विचारोंके प्रचारके लिए। अतः इसकी उन्नतियों हमारे प्रत्येक पाठकको सहायता देनी चाहिए।
2. जिन महाशयोंको इसका कोई लेख अच्छा मालूम हो उन्हें चाहिए कि उस लेखको जितने मित्रोंको वे पढ़कर सुना सकें अवश्य सुना दिया करें।
3. यदि कोई लेख अच्छा न मालूम हो अथवा विरुद्ध मालूम हो तो केवल उसीके कारण लेखक या सम्पादकसे द्वेष भाव न धारण करनेके लिए सविनय निवेदन है।
4. लेख भेजनेके लिए सभी सम्प्रदायके लेखकोंको आमंत्रण है। —सम्पादक।

## भारतविरुधात् ! हजारों प्रशसापत्र प्राप्त ! अस्सी प्रकारके बात रोगोंकी एकमात्र औषधि महानारायण तैल ।

हमारा महानारायण तैल सब प्रकारकी वायुकी पीड़ा, पक्षाघात, ( लकवा, फालिज ) गठिया मुन्नुवात, कंप्वात, हाथ पांव आदि अंगोंका जकड़ जाना, कमर और पीठकी भयानक पीड़ा, पुरानीसे पुरानी सूजन, चोट, हड्डी या रगका दबजाना, पिचजाना या टेढ़ी तिरछी होजाना और सब प्रकारकी अंगोंकी दुर्बलता आदिमें बहुत बार उपयोगी साबित होचुका है।

मूल्य २० तांलेकी शीशीका दो रुपया।

डा० म० ॥ ) आना।

## वैद्य ।

### सर्वापयोगी मासिक पत्र ।

यह पत्र प्रतिमास प्रत्येक घरमें उपस्थित होकर एक वैद्य या डाक्टरका काम करता है। इसमें स्वास्थ्य-रक्षाके सुलभ उपाय, आरोग्य शास्त्रके नियम, प्राचीन और अर्वाचीन वैद्यकके सिद्धान्त, भारतीय वनौषधियोंका अन्वेषण, स्त्री और बालकोंके कठिन

रोगोंका इलाज आदि अच्छे २ लेख प्रकाशित होते हैं। इसकी वार्षिक फीस केवल १ ) ६० मात्र है।

नमूना मुफ्त मंगाकर देखिये।

पता—वैद्य शङ्करलाल हरिशङ्कर

आयुर्वेदोद्धारक—औषधालय, सुरादाबाद।

## आढ़तका काम ।

बंबईसे हरकिस्मका माल मँगानेका सुभीता

हमारे यहाँसे बंबईका हरकिस्मका माल क्रिफायतके साथ भेजा जाता है। तांबें व पीतलकी चदरें, सब तरहकी मशीनें, हारमोनियम, ग्रामोफोन, टोपी, बनियान, मोजे, छत्री, जर्मन-सिलवर और अलुमिनियमके बर्तन, सब तरहका साबुन, हरप्रकारके इत्र व सुगन्धी तेल, छोटी बड़ी घड़ियाँ, कटलरीका सब प्रकारका सामान, पेन्सिल कागज, स्याही, हेण्डल, कोरी कापी, स्लेट, स्याहीसोख, ट्राइंगका सामान, हरप्रकारकी देशी और निलायनी दवाइयाँ, काँचकी छोटी बड़ी शीशियोंकी पेट्रियाँ, हरप्रकारका देशी निलायती रेशमी कपड़ा, सुपारी, इलायची, मेवा, कपूर आदि सब तरहका किराना, बंबईकी और बाहरकी हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी पुस्तकें, जैन पुस्तकें, अगरबत्ता, दशांगधूप, केशर, चंदन आदि मंदिरोपयोगी चीजें, तरह तरहकी छोटी बड़ी रंगीन तसवीरें, अपने नामकी अथवा अपनी दुकानके नामकी मुहरें, कार्ड, चिट्ठी, नोटपेपर, मुहूर्तकी चिट्ठियाँ ( कंकुपत्रिका ) आदि, हरकिस्मका माल हाशयारीके साथ वी. पी. सेरवाना किया जाता है। एक बार व्यवहार करके देखिये। आपको किसी तरहका धोका न होगा।

हमारा सुरमा और नमकसुलेमानी अवश्य मँगाइए। बहुत बढ़िया है।

पता—पूरणचंद नन्हेंलाल जैन।

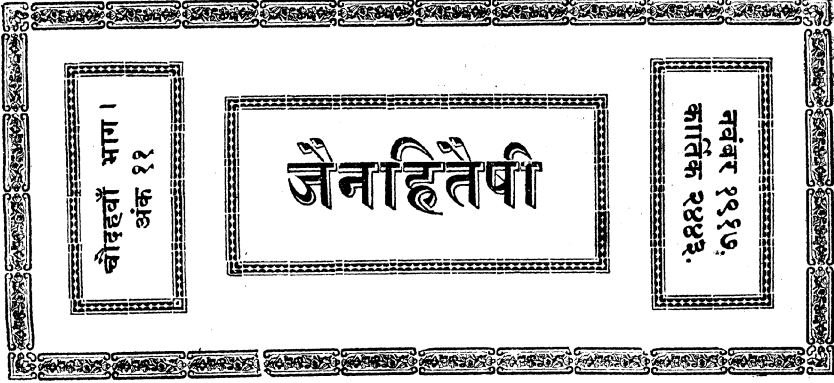
C O जैन-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, हिराबाग,

पो० सि० नं०, बम्बई।

Printed by Chintaman Sakharam Deole, at the Bombay Vibhav Press, Servants of India Society's Building, Sandhurst Road, Girgaon, Bombay.

Published by Nathuram Premi, Proprietor, Jain-Granth-Ratnakar Karyalaya, Hirabag, Bombay.

हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।



न हो पक्षपाती बतावे सुमार्ग, डरे ना किसीसे कहे सत्यवाणी ।  
वने है विनोदी भले आशयोंसे, सभी जैनियोंका हितैषी हितैषी ॥

## ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति ।

( २ )

[ लेखक—बाबू सूरजभानजी वकील । ]

इससे पहले लेखमें सिद्ध किया गया है कि, ब्राह्मण वर्णकी स्थापनाके समय मिथ्यात्वी ब्राह्मण मौजूद थे; जिनका उस समय बड़ा भारी प्रभाव और प्रचार था और ब्राह्मण वर्ण स्थापन करनेकी कथा भरतमहाराजके समयकी नहीं, किन्तु उस समयकी है; जब कि हिन्दुस्तानमें ब्राह्मणोंका बड़ा भारी जोर था और वे जैनियोंसे अत्यंत घृणा और द्वेष करते थे । आदिपुराणमें वर्णित ब्राह्मणोंकी उत्पत्तिके शेष कथनको पढ़नेसे यह बात और भी ज्यादा दृढ़ हो जाती है और यह नतीजा निकल आता है कि पंचमकालमें ही किसी समय जैनियोंने किसी जैनी राजाका सहारा लेकर मिथ्यात्वी ब्राह्मणोंके प्रभावसे बचनेके लिये कुछ गृहस्थी जैनी-

योंको पूजना शुरू कर दिया और उनसे वे सब काम लेने लगे, जो ब्राह्मण लोग किया करते थे; जिससे होते होते उनकी एक जाति ही बन गई । मालूम होता है कि, जैन ब्राह्मणोंकी यह उत्पत्ति दक्षिण देशमें ही हुई है । क्योंकि जैन राजा भी वहीं हुए हैं और वहीं अब तक जैन ब्राह्मण मौजूद भी हैं, जो ब्राह्मणोंकी तरह ही जैन-यजमानोंके सब काम करते हैं । किन्तु यह नई सृष्टि जैनसिद्धान्तके विरुद्ध होनेके कारण जैनियोंमें सब जगह मान्य न हुई, अर्थात् दक्षिण देशके सिवाय अन्य कहीं भी इसका प्रचार न हो सका ।

आदिपुराणमें अपने बनाये हुए जैन ब्राह्मणोंको उपदेश देते हुए भरतमहाराजने उनके दस अधिकार बताये हैं । उसमें व्यवहारोपेक्षिता अधिकारको वर्णन करते हुए लिखा है कि, जैनागमका आश्रय लेनेवाले इन ब्राह्मणोंको प्रायश्चित्त देनेका भी अधिकार होना चाहिए। यदि उनको यह अधिकार न होगा तो वे न अपनी शुद्धि

कर सकेंगे और न दूसरोंको ही शुद्ध कर सकेंगे । इस प्रकार अशुद्ध रहकर यदि वे गैरोंसे शुद्ध होनेकी इच्छा करेंगे तो कैसे काम चलेगा?—

व्यवहारेशितां प्राहुः प्रायश्चित्तादिकर्मणि ।  
स्वतंत्रतां द्विजस्यास्य श्रितस्य परमां श्रुतिं ॥ १९२ ॥  
तदभावे स्वमन्याश्च न शोधयितुमर्हति ।  
अशुद्धः परतः शुद्धिमभीप्सन्नकृतो भवेत् ॥ १९३ ॥  
—पर्व ४० ।

इन श्लोकोंसे स्पष्ट सिद्ध है कि, जिस समय जैन ब्राह्मण बनाये गये थे, उस समय अन्य मतके ब्राह्मण मौजूद थे जो प्रायश्चित्तादि दिया करते थे; किन्तु जैन ब्राह्मण बनानेवाला यह चाहता था कि जैन ब्राह्मणोंको भी प्रायश्चित्त देनेका अधिकार हो जावे । इसही कारण वह जोर देता है कि, यदि जैन ब्राह्मणोंको यह अधिकार न होगा तो वे भी अपना प्रायश्चित्त अन्य मतियोंसे ही कराया करेंगे और तब जैन ब्राह्मण बनाना व्यर्थ ही रहेगा । इस कारण अन्यमतियोंके समान इनको भी प्रायश्चित्तका अधिकार मिलना चाहिए ।

अन्य ९ अधिकारोंके पढ़नेसे भी यही बात निकलती है । ( देखो पर्व ४० श्लोक १७८ से २१४ तक । ) पहला अधिकार अतिबालविद्या अर्थात् बालपनेसे ही उपासकाचार शास्त्रोंका पढ़ना है । इसके विषयमें लिखा है कि यदि वे बालपनेसे ही इनको नहीं पढ़ेंगे तो अपनेको झूठ मूठ ब्राह्मण माननेवाले मिथ्यादृष्टियोंसे ठगे जावेंगे और मिथ्या शास्त्रोंके पढ़नेमें लग जावेंगे । इससे सिद्ध है कि उस समय साधारण तौरपर मिथ्यात्वा ब्राह्मणोंके ही द्वारा पढ़ाई होती थी और जैन ब्राह्मण बनानेवालेको इस बातका भय था कि, यदि हमारे बनाये हुए ब्राह्मणोंके बालक बचपनसे ही जैनशास्त्रोंके पढ़नेमें न लगाये जायेंगे तो प्रचलित रीतिके अनुसार वे अन्य

मतियोंकी ही पाठशालामें जावेंगे और उनके शास्त्र पढ़कर अन्यमती ही हों जावेंगे ।

दूसरा अधिकार कुलावधिक्रिया अर्थात् अपने कुलके आचरणोंकी रक्षा रखना है । इसके विषयमें भी भय दिखलाया है कि, ऐसा न करनेसे वह दूसरे कुलका हो जावेगा । अर्थात् यदि वह अन्य मतियोंके बहकानेमें आकर उनकी-सी क्रिया करने लगेगा तो उनके ही कुलका हो जावेगा । तीसरा अधिकार वर्णोत्तम क्रिया है, अर्थात् अपनेको सब वर्णोंसे उत्तम मानना । क्योंकि ऐसा न माननेसे न तो वह अपनेको शुद्ध कर सकता है और न दूसरोंको; इसकी बाबत भी भय प्रगट किया है कि यदि वह अपनेको सबसे बड़ा न मानेगा तो अपनेको; शुद्ध करनेकी इच्छासे मिथ्यादृष्टी कुलिंगियोंकी सेवा करने लगेगा; और कुब्रह्मको मानकर उनके सब दोष प्राप्त कर लेगा । इससे भी सिद्ध है कि जैन ब्राह्मणोंके बनाये जानेके समय अन्य मतियोंका बड़ा भारी प्राबल्य और लोगोंमें उनकी बड़ी भारी श्रद्धा थी, और उस समय मिथ्यात्वी ब्राह्मण ही बड़े माने जाते थे—जैन ब्राह्मण बहुत घटिया और अशुद्ध समझे जाते थे । इसी कारण जैनब्राह्मण बनानेवाला अपने ब्राह्मणोंको यह उपदेश देता था कि तुम भी अपनेको बड़ा मानो और सब जैनी भी इनको बड़ा मानें; जिससे ये लोग अपनेको घटिया या अशुद्ध समझकर अपनी शुद्धि करानेके वास्ते अन्य मतियोंके पास न जावें ।

चौथा अधिकार पात्रत्व है, अर्थात् ये जैन ब्राह्मण दान देनेके पात्र हैं, इनको दान अवश्य देना चाहिए । इस विषयमें भी जैन-ब्राह्मणोंको डराया है कि उनको गुणी पात्र बनना चाहिए । यदि वे गुण प्राप्त नहीं करेंगे तो उनको कोई नहीं मानेगा और मान्य न होनेसे राजा भी उनका धन हर लेगा । इससे भी यही सिद्ध होता

है कि, जैनब्राह्मण बनानेवालेको इस बातका निश्चय था कि मिथ्यात्वी ब्राह्मण तो जातिके ब्राह्मण हैं, उनमें गुण हों वा न हों वे तो अवश्य पूजे ही जावेंगे ( इस विषयमें देखो प्रथम लेख, जिससे मालूम हो जायगा कि आदिपुराणमें बार बार यह बात कही गई है कि गुणहीन होने पर भी ये मिथ्यात्वी ब्राह्मण केवल अपनी जातिके घमंडसे अपनेको पुजवाते हैं ), परन्तु उसको नवीन बनाये हुए जैन ब्राह्मणोंकी वाबत पूरा भय था कि यदि ये लोग गुण प्राप्त न करेंगे तो इनको कोई भी न मानेगा और तब यह सारा ही खेल बिगड़ जावेगा ।

पाँचवाँ सृष्टि अधिकार है, अर्थात् जिस प्रकार जैनधर्मकी उत्पत्ति वर्णन की गई है, उसकी रक्षा करना । अभिप्राय यह कि जैन ब्राह्मणोंकी इस नई सृष्टिको नये प्रमाणोंसे पुष्ट करते रहना चाहिए, अर्थात् यह सिद्ध करते रहना चाहिए कि युगकी आदिमें तो सब ब्राह्मण जैनी ही बनाये गये थे; परन्तु पंचमकालमें ये लोग भ्रष्ट होकर मिथ्यात्वी हो गये हैं । इस कारण इनमेंसे जो कोई फिर जैनी बनता है वह अपने प्राचीन सत्य-मार्गको ही ग्रहण करता है । यहाँ भी डर दिखाया है कि यदि वे ऐसा न करते रहेंगे तो मिथ्यादृष्टि लोग राजा प्रजा सबको बहका लेंगे, अर्थात् वे लोग राजाको और प्रजाको समझा देंगे कि जो लोग परम्परासे सन्तान प्रति सन्तान ब्राह्मण-चले आते हैं और वेदको मानते आ रहे हैं वे ही ब्राह्मण हैं और वे ही पूजनेके योग्य हैं, ये नवीन बने हुए जैन ब्राह्मण न ब्राह्मण हो सकते हैं और न पूजनेके योग्य हैं । यदि जैनब्राह्मण राजाओंको उपदेश देकर अपने धर्मपर दृढ़ न रक्खेंगे तो राजा लोग भी अन्य मतकी धर्म-सृष्टिको मानने लगेगे और तब जैनब्राह्मणोंका कुछ भी ऐश्वर्य न रहेगा और तब जैन लोग भी अन्य मतको मानने लगेगे ।

छटा अधिकार प्रायश्चित्तका है, जिसका वर्णन पहले हो चुका है । सातवाँ अधिकार अवध्यत्व है, अर्थात् जैनी ब्राह्मणको चाहिए कि वह अपना यह अधिकार जताता रहे कि मैं ब्राम्हण हूँ, इस कारण मुझको किसी प्रकार मारने वा तिरस्कार करनेका किसीको अधिकार नहीं है । यदि वह ऐसा अधिकार पुष्ट न करता रहेगा, तो सब लोग उसे मारने लगेगे और ऐसा होनेसे जैन-धर्मकी भी प्रमाणता जाती रहेगी । वैदिक मतके ग्रन्थोंमें लिखा है कि ब्राह्मण अवध्य है, इससे ब्राह्मणोंको कोई नहीं मारता था । यही अधिकार जैन ब्राह्मणोंको दिये जानेकी यह कोशिश की गई थी । शोककी बात है कि, ब्राह्मणोंका अति प्राबल्य होनेके कारण ब्राह्मणोंने जो यह महा-खुलमका अधिकार प्राप्त कर लिया था कि वे कैसा ही दोष करें और कितना ही किसीका नुकसान कर दें; परन्तु उनको कोई भी न मार सके और न उनका तिरस्कार कर सके, वही अधिकार प्राप्त करनेकी शिक्षा जैनब्राह्मणोंको दी गई है ।

आठवाँ अधिकार अदंड्यत्व है, अर्थात् राजा भी उनको दंड न दे सके । जैनब्राह्मणको शिक्षा दी गई है कि इस अधिकारको भी वह अपने वास्ते सिद्ध करता रहे । यह अन्याय्य अधिकार भी ब्राह्मणोंने अपनी चलतीमें प्राप्त कर लिया था कि उनसे चाहे जैसा दोष हो जाय, परन्तु राजा भी उनको दंड न दे सके । शोककी बात है कि, इस अधिकारके प्राप्त करनेके लिए भी जैन ब्राह्मणोंको शिक्षा दी गई है ।

नवाँ अधिकार मान्यता है, अर्थात् सब लोग इन जैनी ब्राह्मणोंको मानें और पूजें । जैनी ब्राह्मणोंको समझाया गया है कि उनको बड़ी कोशिशके साथ इस मान्यताको प्राप्त करना चाहिए । यदि लोग उनका आदरसत्कार नहीं करेंगे तो वे अपने पदसे गिर जावेंगे ।

दसवाँ अधिकार प्रजातंत्रसम्बन्ध है, अर्थात् अन्यमतियोंके साथ मिलते जुलते और अनेक प्रकारका संबंध रखते हुए भी उनके कारण अपने गुणोंको नष्ट न करना। इससे भी यही सिद्ध होता है कि जैन ब्राह्मणोंके बनाये जाते समय अन्य मतका बहुत ही ज्यादा प्रचार था।

इस सारे कथनसे स्पष्ट सिद्ध है कि जैन ब्राह्मणोंके बनानेमें इस बातकी बहुत ही ज्यादा कोशिश की गई थी कि इन नवीन जैन ब्राह्मणोंको भी वे सब अधिकार प्राप्त हो जावें जो प्राचीन मिथ्यात्वी ब्राह्मणोंको प्राप्त हो रहे हैं, वे अधिकार चाहे न्यायरूप हों चाहे महा-अन्यायरूप। साथ ही इस बातकी बड़ी सावधानी रक्खी गई थी कि, मिथ्यात्वी ब्राह्मणोंके प्रबल प्रभावमें आकर ये नवीन ब्राह्मण फिसल न जावें, या किसी प्रकार अपने पदसे गिर न जावें। अर्थात् जिस प्रकार बन सके वे अपने इस नवीन पदको जो जैनी राजाओंके सहारेसे उनको प्राप्त हो गया है बनाये रक्खें और बिगड़ने न दें। इस ही कारण इन अधिकारोंके वर्णनमें इस बातकी शिक्षा बहुत ही तर्काजेके साथ दी गई है कि ये नवीन ब्राह्मण राजाओंके श्रद्धानको डारवाँडोल न होने दें। क्यों कि उस समय मिथ्यामतका अधिक प्रचार होनेसे जैन राजाओंके फिसलनेका खटका बराबर लगा रहता था।

यह सारी ही रचना निस्संदेह पंचमकालकी है, भरत महाराजके समयकी नहीं; परन्तु फिर भी उक्त दसों अधिकारोंका उपदेश भरत महाराजके मुखसे ब्राह्मण वर्णकी स्थापनाके दिन दिलाया गया है और साथ ही इसके यह भी लिख दिया गया है कि, भरत महाराजने यह सब उपदेश उपासकाध्ययन सूत्रके ही अनुसार किया है, परन्तु द्वादशांग षाणीमें अन्य मतियोंका इतना प्रबल भय किसी तरह भी नहीं हो सकता

है। और ऐसे महा जुलमके अधिकारोंकी प्राप्ति का उपदेश भी जिनवाणीमें सम्भव नहीं हो सकता है कि ब्राह्मणको न प्रजा ही दंड दे सके और न राजा ही, जिससे वे दोटंगे सांड बनकर बे-रोकटोक जो चाहे जुलम करते रहे और कोई चूँ भी न कर सके।

हमारे इस विचारकी पुष्टि—कि पंचम कालमें ब्राह्मणोंका अति प्राबल्य हो जाने पर उनके प्रभावसे बचनेके वास्ते उनहीका रूप देकर और उनहीकी क्रियायें सिखाकर जैन ब्राह्मण बनाये गये हैं—इस बातसे भी होती है कि ब्राह्मण वर्णकी उत्पत्तिके इस सारे कथनमें—जो आदिपुराणके पर्व ३८ से ४२ तक में वर्णित है—जैन ब्राह्मणोंको धर्मका उपदेश देते हुए प्रायः उनही शब्दोंका प्रयोग किया गया है जो वैदिक मतके खास पारिभाषिक शब्द हैं। श्रुति, स्मृति और वेद ऐसे शब्द हैं जो वैदिकधर्मके शास्त्रोंके वास्ते ही व्यवहार किये जाते हैं। वेदोंको श्रुति कहते हैं और मनु याज्ञवल्क्य आदि ऋषियोंकी आज्ञायें स्मृतियाँ कहलाती हैं। श्रुति, स्मृति और वेद आदि शब्द वैदिकधर्मके ऐसे टर्कसाली शब्द हैं कि स्वयं आदिपुराणके कर्ता ने भी कई स्थानों पर उनका व्यवहार वैदिकधर्मके ग्रन्थोंको ही सूचित करनेके वास्ते किया है। जैसे पर्व ३९ श्लोकमें लिखा है कि श्रुतिके वाक्य भी विचार करने पर ठीक नहीं मालूम होते हैं; दुष्टोंके ही बनाये हुए जान पड़ते हैं:—  
श्रौतान्यपि हि वाक्यानि संमतानि क्रियाविधौ ।  
न विचारसहिष्णूनि दुःप्रणीतानि तानि वै ॥ १० ॥  
और भी—‘तान्प्राहुरक्षरम्लेच्छा येऽमी वेदो-  
पजीविनः’ तथा ‘सोऽस्त्यमीषां च यद्दे-  
शास्त्रार्थमधमद्विजाः’ आदि ४२ वें पर्वके श्लोकोंसे भी स्पष्ट होता है कि हिन्दूधर्मके वेदोंके लिए ही श्रुति और वेद शब्दोंका प्रयोग किया जाता है; किसी जैन शास्त्रके लिए नहीं।

श्रुति स्मृति और वेद आदि शब्दोंका ऐसा खुला हुआ और जगत्प्रसिद्ध अर्थ होनेकी अवस्थामें भी और आचार्य महाराजको भी यही अर्थ मान्य होनेकी हालतमें भी ये शब्द जैन ब्राह्मणोंको शिक्षा देनेमें जिस प्रकार व्यवहारमें लाये गये हैं, उससे यह बात स्पष्ट सिद्ध होती है कि जैनी ब्राह्मणोंको बिलकुल वही रूप दिया गया था जो वैदिक ब्राह्मणोंका था । पर्व ३९ में लिखा है कि वेद, पुराण, स्मृति, चरित्र, क्रिया-विधि, मंत्र, देवता—लिंग और आहारादिकी शुद्धि-का यथार्थ रीतिसे वर्णन जिसमें परम ऋषियोंने किया है वही धर्म है; इसके सिवाय और सब पाखंड है । जिसके १२ अंग हैं, जो शुद्ध है और जिसमें श्रेष्ठ आचरणोंका निरूपण है, वही श्रुतज्ञान है, उसहीको वेद कहते हैं; जो हिंसाका उपदेश करनेवाला वाक्य है वह वेद नहीं है, उसको तो यमराजका वाक्य मानना चाहिए ।

वेदः पुराणं स्मृतयश्चरित्रं च क्रियाविधिः ।  
मंत्राश्च देवतालिंगमाहाराद्याश्च शुद्ध्यः ॥ २० ॥  
एतेऽर्था यत्र तत्त्वेन प्रणीताः परमर्षिणा ।  
स धर्मः स च सन्मार्गस्तदाभासाः स्युरन्यथा ॥ २१ ॥  
श्रुतं सुविहितं वेदो द्वादशांगमकल्मषं ।  
हिंसोपदेशि यद्वाक्यं न वेदोऽसौ कृतांतवाक् ॥ २२ ॥

इसी प्रकार पर्व ३९ में लिखा है कि जब वह श्रावक अपने चरित्र और अध्ययनसे औरोंका उपकार करता है, प्रायश्चित्त आदि सब विधियोंको जान लेता है और वेद स्मृति और पुराण आदिका जानकार हो जाता है, तब गृहस्थाचार्य हो जाता है:—

विशुद्धस्तेन वृत्तेन ततोऽभ्येति गृहीशिता ।  
वृत्ताध्ययनसंपत्त्या परानुग्रहणक्षमः ॥ १३ ॥  
प्रायश्चित्तविधानः श्रुतिस्मृतिपुराणवित् ।  
गृहस्थाचार्यतां प्राप्तस्तदा धत्ते गृहीशितां ॥ १४ ॥

इसी प्रकार पर्व ३९ में लिखा है कि अन्य यजमान भी जिसकी उपासना करते हैं ऐसा वह बुद्धिमान् भव्य अर्थात् जैन ब्राह्मण स्वयं पूजा करता है और अन्य लोगोंसे कराता है; वेद वेदांगके विस्तारको स्वयं पढ़ता है और दूसरोंको पढ़ाता है:—

स यजन्याजयन् धोमान् यजमानैरुपासितः ।  
अध्यापयन्नवीयानो वेदवेदांगविस्तरं ॥ १०३ ॥

इसी प्रकार पर्व ३९ में ही लिखा है कि द्विजों अर्थात् जैनी ब्राह्मणोंकी शुद्धि श्रुति, स्मृति, पुराण, चरित्र, मंत्र और क्रियाओंसे और देवताओंका चिह्न धारण करने तथा कामका नाश करनेसे होती है:—

श्रुतिस्मृतिपुरावृत्तवृत्तमंत्रक्रियाश्रिता ।  
देवतालिंगकामांतकृता शुद्धिर्द्विजन्मनां ॥ १३९ ॥

इसी प्रकार पर्व ४० में लिखा है कि, अब मैं श्रीऋषभदेवकी श्रुतिके अनुसार सुरेन्द्रमंत्र कहता हूँ:—

मुनिमंत्रोऽयमाभ्रातो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।  
वक्ष्ये सुरेन्द्रमंत्रं च यथा स्माहार्षीभी श्रुतिः ॥ ४० ॥

फिर इसी पर्वके श्लोक ६३ में लिखा है कि अब मैं श्रुतिके अनुसार परमेष्ठी मंत्र कहता हूँ:—

मंत्रः परमराजादिर्मतोऽयं परमेष्ठिनां ।  
परं मंत्रमितो वक्ष्ये यथाऽऽह परमा श्रुतिः ॥ ६३ ॥

फिर इसी पर्वके श्लोक १९२ में लिखा है कि, श्रुतिका आश्रय लेनेवाले इन द्विजोंको अर्थात् जैनी ब्राह्मणोंको जो स्वतंत्रता है उसे व्यवहारेशिता कहते हैं:—

व्यवहारेशितां प्राहुः प्रायश्चितादिकर्मणि ।  
स्वतंत्रतां द्विजस्यास्य श्रितस्य परमां श्रुतिम् ॥ १९२ ॥

वैदिकधर्ममें ग्रहत्यागीको परित्राजक कहते हैं । जैनशास्त्रोंमें इसके स्थानमें मुनि, साधु, निर्ग्रन्थ अनगार आदि शब्द व्यवहार किये जाते हैं;

परन्तु जैन ब्राह्मणोंको उपदेश देते समय आदि-पुराणमें मुनि या साधुके स्थानमें परिव्राजक शब्दका प्रयोग किया गया है और इसी कारण मुनि-दीक्षाका नाम परिव्राजक क्रिया रक्खा है तथा इसही नामसे इसका उपदेश देते हुए और अन्य मतियोंकी परिव्राज्य क्रियाका निषेध करते हुए वैदिकधर्मकी दीक्षाकी तरह जैन परिव्राज्य दीक्षाको भी शुभतिथि, शुभ नक्षत्र, शुभयोग शुभमुहूर्त और शुभलग्नमें ही लेनेकी आज्ञा दी है। यथा—

सद्गृहीतमिदं ज्ञेयं गुणैरामोपबृंहणं ।  
 पारिव्राज्यमितो वक्ष्ये सुविशुद्धं क्रियांतरं ॥ १५४ ॥  
 गार्हस्थ्यमनुपाल्यैवं गृहवास्राद्विरज्यतः ।  
 यद्दीक्षाग्रहणं तद्धि पारिव्राज्यं प्रचक्षते ॥ १५५ ॥  
 पारिव्राज्यं परिव्राजो भावो निर्वाणदीक्षणं ।  
 तत्र निर्ममतावृत्त्या जातरूपस्य धारणं ॥ १५६ ॥  
 प्रशस्ततिथिनक्षत्रयोगलग्नप्रहाशकैः ।  
 निर्ग्राह्याचार्यमाश्रित्य दीक्षा ग्राह्या सुसुधुणा ॥ १५७ ॥  
 -पर्व ३९ ।

वेदानुयायी लोग ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति ब्रह्माके मुखसे ही मानते हैं, जैन ब्राह्मणोंको उपदेश देते समय उनके इस सिद्धान्तको भी मानकर यह समझाया गया है कि श्रीजिनेन्द्र ही ब्रह्मा हैं और जो कोई उनके मुखकी वाणीको स्वीकार करता है उसहीको उनके मुखसे उत्पन्न हुआ ब्राह्मण मानना चाहिए। यथा पर्व ३९ में—

स्वायंभुवान्मुखाज्जातास्ततो देवद्विजा वयं ।  
 व्रतचिह्नं च नः सूत्रं पवित्रं सूत्रदर्शितं ॥ ११७ ॥  
 ब्रह्मणोऽपत्यमित्येवं ब्राह्मणाः समुदाहताः ।  
 ब्रह्मा स्वयंभूमैगवान्परमेष्ठी जिनोत्तमः ॥ १२७ ॥  
 सह्यादिपरमब्रह्मा जिनेन्द्रो गुणवृंहणात् ।  
 परंब्रह्म यदायत्तमामनन्ति मुनीश्वराः ॥ १२८ ॥  
 नैपाजिनधरो ब्रह्मा जटाकूर्वादिलक्षणः ।  
 यः कामगर्दभो भूत्वा प्रच्युतो ब्रह्मवर्चसात् ॥ १२९ ॥

गरज कहाँ तक कहें, जैन ब्राह्मणोंको उपदेश देनेमें विशेषतः वैदिक धर्मके ही सिद्धान्तों और पारिभाषिक शब्दोंका प्रयोग किया गया है; जिससे स्पष्ट सिद्ध है कि जैन ब्राह्मण बना-नेमें वैदिक ब्राह्मणोंकी ही रीस की गई है। ब्राह्मण वर्ण स्थापन करनेके दिन भरत महाराजकी तरफसे जो उपदेश इन नवीन ब्राह्मणोंको दिया जाना आदिपुराणमें लिखा है उसको गौरके साथ पढ़नेसे तो यहाँ तक मालूम होता है कि, इस उपदेशमें वैदिक धर्मके पारिभाषिक शब्द ही व्यवहार नहीं किये गये हैं, किन्तु उनके धर्मके सिद्धान्तों और उनके देवताओंको भी मान लिया गया है और कुछ काटतराशकर उनहीका उपदेश इन जैन ब्राह्मणोंको दिया गया है।

गर्भाधान आदि क्रियाके आरम्भमें ब्राह्मणोंको रत्नत्रयका संकल्प कर अग्नि कुमार देवोंके इन्द्रके मुकुटसे उत्पन्न हुई तीन अग्नियाँ उत्पन्न करनी चाहिए। ये तीनों ही अग्नियाँ तीर्थकर, गणधर और अन्य केवलियोंके मोक्ष कल्याणकके महोत्सवमें अत्यन्त पूज्य मानी गई थीं, इसी वास्ते ये अत्यन्त पवित्र मानी जाती हैं। इन तीनों अग्निओंको जो गार्हपत्य, आहवनीय, और दक्षिणाग्नि नामोंसे प्रसिद्ध हैं तीन कुंडोंमें स्थापन करना चाहिए। वैदिक धर्मके शास्त्रोंमें तीन प्रकारकी अग्नि इनही नामोंसे मानी गई हैं और उक्त शास्त्रोंके कथनके अनुसार इनके यह नाम सार्थक भी होते हैं; परन्तु जैनधर्मके अनुसार ये नाम किसी तरह भी ठीक नहीं बैठते हैं। \* जो

\* वैदिक धर्मके अनुसार 'गार्हपत्य' वह अग्नि है, जिसे प्रत्येक गृहस्थ अपने घरमें सदा बनाये रखता है और जिसे वह अपने पुरुषाओंसे पाता है और सन्तानको देता है। ऋग्वेदमें अग्निको गृहपति कहा है। गृहपतिसे ही गार्हपत्य शब्द बना है। आहवनीय वह अग्नि है, जो गार्हपत्य अग्निमेंसे हवन या होमके वास्ते ली



इन तीनों प्रकारकी अग्नियोंमें इन मंत्रोंसे पूजा करता है वह ब्राह्मण कहलाता है और जिसके घर ऐसी पूजा नित्य होती है उसको आहिताग्नि अर्थात् अग्निहोत्री समझना चाहिए। नित्यपूजन करते समय इन तीनों अग्नियोंका नियोग हव्यके पकानेमें, धूप खेनेमें और दीपकके जलानेमें होता है। घरमें बड़े यज्ञके साथ इन तीनों अग्नियोंकी रक्षा करनी चाहिए और जिनका संस्कार नहीं हुआ है ऐसे लोगोंको यह अग्नि नहीं देनी चाहिए, अर्थात् शूद्र आदिका हाथ इन अग्नियोंको नहीं लगना चाहिए और जिन जैनियोंके गर्माधानादि संस्कार नहीं होते हैं उनके भी हाथ नहीं लगने देना चाहिए। अग्नि स्वयम्

जाती है। ' गार्हपत्यादुद्भूत्य होमार्थं यः संस्क्रियते सः । ' दक्षिणाग्नि वह है, जो दक्षिणकी तरफ रक्खी जाती है। इसे ' अन्वाहार्यपचन ' भी कहते हैं। पुरोहितको जो चढ़ावा दिया जाता है, वह अन्वाहार्य कहलाता है। सायणाचार्य कहते हैं—'अन्वाहरति यज्ञ-सम्बन्धिदोषजातं परिहरत्यनेन इत्यन्वाहार्यो नाम ऋत्विग्मन्यो देय ओदनः । ' मनुस्मतिमें लिखा है कि पितृ-गणोंके मासिक श्राद्धको अन्वाहार्य कहते हैं—' पितृणां मासिकं श्राद्धमन्वाहार्यं विदुर्बुधाः । ' अन्वाहार्यपचनका अर्थ होता है, जो अन्वाहार्यमें काम आवे। सबका सारांश यह हुआ कि प्राचीन समयमें प्रत्येक घरमें अग्नि बड़ी रक्षाके साथ रक्खी जाता था और उसे गार्हपत्य कहते थे। उसमेंसे जो अग्नि होमके वास्ते जला ली जाती थी, वह आहवनीय कहलाती थी और पितृजनोंके वास्ते नैवेद्य तैयार करनेके लिए जो जलाई जाती थी उसे दक्षिणाग्नि कहते थे। प्रो० आपटेने लिखा है कि आहवनीय पूर्वकी तरफ, गार्हपत्य पश्चिमकी तरफ और तीसरी अन्वाहार्यपचन दक्षिणकी तरफ जलाई जाती थी। तीसरीका दक्षिणाग्नि नाम दक्षिणकी ओर जलानेसे ही हुआ है।

आदिपुराणमें जो इन अग्नियोंका, तीर्थंकर गण-धरादिके साथ सम्बन्ध मिलाया है, वह बिलकुल असंगत जान पड़ता है।

पवित्र नहीं है और न कोई देवता ही है, किन्तु अरहंत देवकी मूर्तिकी पूजाके सम्बन्धसे वह पवित्र हो जाती है, इस लिए ही ब्राह्मण लोग इसे पूज्य मानकर पूजा करते हैं। निर्वाणक्षेत्रोंकी पूजाके समान अग्निकी पूजा करनेमें भी कोई दोष नहीं है। ब्राह्मणोंको व्यवहारनयकी अपेक्षासे ही अग्नि पूज्य है और जैन ब्राह्मणोंको अब यह व्यवहारनय अवश्य काममें लाना चाहिए:—

त्रयोऽग्रयः प्रणेयाः स्युः कर्मारंभे द्विजोत्तमैः ।

रत्नत्रितयसंकल्पादग्नीद्रमुकुटोद्भवाः ॥ ८२ ॥

तीर्थंकराग्रभृच्छेषकेवल्यंत्यमहोत्सवे ।

पूजांगत्वं समासाद्य पवित्रत्वमुपागताः ॥ ८३ ॥

कुंडत्रये प्रणेतव्यास्त्रय एतं महाग्रयः ।

गार्हपत्याहवनीयदक्षिणाग्निप्रसिद्धयः ॥ ८४ ॥

अस्मिन्नग्नित्रये पूजां मंत्रैः कुर्वन् द्विजोत्तमः ।

आहिताग्निरिति ज्ञेयो नित्येज्या यस्य सद्गन्निः ॥ ८५ ॥

हविष्पाके च धूपे च दीपोद्दोषनसंविधौ ।

बह्वीनां विनियोगः स्यादमीषां नित्यपूजने ॥ ८६ ॥

प्रयत्नेनाभिरक्ष्यं स्यादिदमग्नित्रयं गृहे ।

नैव दातव्यमन्येभ्यस्तेऽन्ये येऽसुरसंस्कृताः ॥ ८७ ॥

न स्वतोऽग्नेः पवित्रत्वं देवतारूपमेव वा ।

कित्वर्हदिव्यमूर्तीज्यासंबंधात्प्रावणोऽनलः ॥ ८८ ॥

ततः पूजांगतामस्य मत्वाचंति द्विजोत्तमाः ।

निर्वाणक्षेत्रपूजावत्तत्पूजाऽतो न दुष्यति ॥ ८९ ॥

व्यवहारनयापेक्षा तस्येष्टा पूज्यता द्विजैः ।

जैनैरध्यवहार्योऽग्नं नयोऽद्यत्वेऽप्रजन्ममिः ॥ ९० ॥

इन श्लोकोंसे स्पष्ट सिद्ध होता है कि, जैन ब्राह्मणोंको अग्निकी पूजा करनेका उपदेश देते समय उपदेशक महाशयको इस बातका पूरा खटका था कि यह उपदेश जैनसिद्धान्तके अनुकूल नहीं, किन्तु विपरीत है, इसी कारण उन्होंने अनेक बातें बनाकर जित तिस तरह अग्निपूजाका दोष हटानेकी कोशिश की है और आखिरमें यह समझाया है कि आजकल इस

बातकी ज़रूरत ही आ पड़ी है कि किसी न किसी हेतुसे ये जैन ब्राह्मण अग्निपूजा भी करते रहें।

शोक है कि जैन ब्राह्मण बनानेके जोशमें जैनसिद्धांतोंको यहाँ तक भुला दिया गया है कि इन जैन ब्राह्मणोंको शिक्षा देते समय केवल अग्निके पूजनेकी ही आज्ञा नहीं दी है; किन्तु विवाह आदि संस्कारोंमें अग्नि जैसे जड़ पदार्थकी साक्षीकी भी आज्ञा दे डाली है। लिखा है कि जैन ब्राह्मणको उचित है कि, वह पहले सिद्ध भगवान्की पूजन करे, फिर तीनों अग्नियोंकी पूजा करके उनकी साक्षीसे विवाहसम्बंधी क्रिया करे। इसी प्रकार कुछ आगे चलकर लिखा है कि, वर वधु विवाह होने पर देव और अग्निकी साक्षीसे सात दिनके वास्ते ब्रह्मचर्य ग्रहण करें।

सिद्धार्चनविधिं सम्यक् निर्वर्त्य द्विजसप्तमाः ।  
कृताग्नित्रयसंपूजाः कुर्युस्तत्साक्षितां क्रियां ॥ १२८ ॥

पाणिप्रहणदीक्षायां नियुक्तं तद्भूवरं ।  
आसप्ताहं चरेद्ब्रह्मव्रतं देवाग्निसाक्षिकं ॥ १३१ ॥

—पर्व ३८ ।

इसी प्रकार धरतीमाताकी पूजा करनेका भी उपदेश दिया गया है। बालकके जन्म होने पर इन जैन ब्राह्मणोंको आज्ञा दी गई है कि बच्चेकी जरायु और नालको किसी पवित्र पृथिवीमें मंत्र पढ़कर गाढ़ देना चाहिए। मंत्रका अर्थ यह है कि हे सम्यक्दृष्टि धरती माता, तू कल्याण करनेवाली हो। इस मंत्रसे मंत्रित करके उस पर जल और अक्षत डाल कर पाँच रत्नोंके नीचे गर्भका सब मल रखना चाहिए। फिर यह मंत्र पढ़ना चाहिए जिसका अर्थ है कि हे पृथ्वी, तेरे पुत्रोंके समान मेरे पुत्र भी चिरंजीवि हों। यह मंत्र पढ़कर जिस स्वेतमें धान्य उपजता हो उस में उस गर्भमलको रख देना चाहिए—

जरायुपटलं चास्य नाभिनालसमायुतं ।  
शुचौ भूमौ निखातायां विक्षिपेन्मंत्रसापठन् ॥ १२१ ॥

सम्यग्दृष्टिपदं बोधे सर्वमातेति चापरं ।  
वसुंधरापदं चैव स्वाहांतं द्विरुदाहरेत् ॥ १२२ ॥

मंत्रेणानेन संमंत्र्य भूमौ सोदकमक्षतं ।  
क्षिप्वा गर्भमलं न्यस्तपंचरत्नतले क्षिपेत् ॥ १२३ ॥  
त्वत्पुत्रा इव मत्पुत्रा भूयासुश्चिरर्जाविनः ।  
इत्युदाहृत्य सस्याहं तःक्षेप्तव्यं मदीतले ॥ १२४ ॥  
—पर्व ४० ।

इन श्लोकोंसे सिद्ध है कि जैनसिद्धान्त-शास्त्रोंमें अन्य मतके जिन जिन देवताओंको मिथ्या देवता सिद्ध किया है और जिनका पूजना लोकमूढ़ता या देवमूढ़ता बताया है, वे सब ही मिथ्या देव सम्यक्दृष्टि कहनेसे सच्चे देव हो सकते हैं; जैसा कि उक्त श्लोकोंमें धरतीको सम्यक्दृष्टि कहकर जैनकी देवी बना लिया है और जैन ब्राह्मणोंको उसके पूजनेकी आज्ञा दे दी है।

पूजन क विषयमें जैन ब्राह्मणोंको आज्ञा दी गई है कि ढामके आसन पर बैठ कर पूजन करनी चाहिए और सबसे पहले अष्ट द्रव्यसे भूमिका पूजन करना चाहिए—

दर्भास्तरणसंबंधस्ततः पश्चादुदीर्यतां ।  
विघ्नोपशातये दर्पमथनाय नमः पदं ॥ ६ ॥  
गंधप्रदानमंत्रश्च शीलगंधाय वै नमः ।  
गुणप्रदानमंत्रोऽपि विमलाय नमः पदं ॥ ७ ॥  
कुर्यादक्षतपूजार्थमक्षताय नमः पदं ।  
धूपार्थं श्रुतधूपाय नमः पदमुदाहरेत् ॥ ८ ॥  
ज्ञानोद्योताय पूर्वं च दीपदाने नमः पद ।  
मंत्रः परमसिद्धाय नम इत्यमृतोद्धृतौ ॥ ९ ॥  
मंत्रैरेभिस्तु संस्कृत्य यथावज्जगतांतलं ।  
ततोऽन्वक् पीठिकामंत्रः पठनीयो द्विजोत्तमैः ॥ १० ॥  
—आदिपुराण पर्व ४० ।

नित्यपूजनके मंत्रोंमें ऐसे मंत्र पढ़नेकी आज्ञा दी है, जिनका अर्थ है कि अरहंतकी माताकी शरण लेता हूँ, अरहंतके पुत्रकी शरण लेता हूँ।

यथा—अर्हन्मातुः शरणं प्रपद्यामि, अर्हन्सुतस्य शरणं प्रपद्यामि ( पर्व ४० श्लोक २७-२८ ) । इसी प्रकार आज्ञा दी है कि भगवान्की पूजाके साथ ग्रामपतिकी भी पूजा करे, इन्द्रके खजानची कुबेरकी भी पूजा करे । यथा—ग्रामपतये स्वाहा, सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे निधिपते वैश्रवण वैश्रवण स्वाहा, (पर्व ४०, श्लोक ३३, ३६) । इसी प्रकार भूपति, नगरपति, और कालश्रमण अर्थात् यक्षकी पूजाकी भी आज्ञा दी है । यथा:—सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे भूपते भूपते नगरपते नगरपते कालश्रमण कालश्रमण स्वाहा ( पर्व ४०, श्लोक ४४, ४५, ४६ । ) इसी प्रकार इन्द्र और उनके नौकरोंका पूजन करना भी बताया है । यथा:—सौधर्माय स्वाहा, कल्याधिपतये स्वाहा, अनुचराय स्वाहा, परंपरेंद्राय स्वाहा, अहमिन्द्राय स्वाहा ( पर्व ४० श्लोक ५०, ५१, ५२ ) ।

आदिपुराणके पढ़नेसे यह भी मालूम होता है कि इन जैन ब्राह्मणोंको श्राद्ध करना आदि पितृकर्म भी सिखाया गया था; क्योंकि इन जैन ब्राह्मणोंको जहाँ यह समझाया गया है कि वेदपाठी ब्राह्मण क्रोध करके तुमको उलाहना देंगे वहाँ बताया गया है कि वे यह उलाहना देंगे कि यद्यपि तू देव, अतिथि, पितृ, और अग्नि-सम्बन्धी कार्य ठीक ठीक करता है, तो भी तू देवगुरु और ब्राह्मणको प्रणाम करनेसे विमुख ही है । यथा:—

देवताऽतिथिपितृमिकार्येष्वप्राकृतो भवान् ।

गुरुद्विजातिदेवानां प्रणम्याच्च पराङ्मुखः ॥१११॥

—पर्व ३९ ॥

जैन ब्राह्मणोंको वैदिक ब्राह्मणोंका रूप देनेके वास्ते केवल इतना ही नहीं किया गया है कि ऊँक धर्मके देवता, उनकी पूजनविधि और उनकी धर्मक्रियाओं और संस्कारोंको सम्यक्-

दृष्टि आदि पद लगाकर वा कुछ काट-तराशकर स्वीकार कर लिया है; किन्तु इन जैन ब्राह्मणोंकी पूजा भी श्रीजिनेंद्रदेवकी पूजाके समान करनेकी आज्ञा दे डाली है । जैनधर्ममें देव, गुरु और शास्त्रकी पूजाकी जाती है; किन्तु वैदिक धर्ममें देव, गुरु और ब्राह्मणकी पूजा मानी गई है; जैसा कि पर्व ३८ के श्लोक १११ से—जो ऊपर उद्धृत है—सिद्ध है । इस कारण इन जैन ब्राह्मणोंको शिक्षा देते समय देव गुरु शास्त्रके स्थानमें देव, गुरु और ब्राह्मणकी ही पूजा करनेकी आज्ञा दी गई है । त्रेपन क्रियाओंकी शिक्षा देते हुए सातवीं क्रियाकी बाबत पर्व ३८ में लिखा है कि अपनी विभूति और शक्तिके अनुसार देव, साधु और ब्राह्मणका पूजन करना चाहिए ।

यथाविभवमत्रेणं देवर्षिद्विजपूजनं ।

शस्तं च नामधेयं तत्स्थाप्यमन्वयवृद्धिकृत् ॥ ८८ ॥

इसी प्रकार १६ वीं क्रियाकी बाबत इसी पर्वमें लिखा है कि पहले ब्राह्मणकी पूजा करके फिर व्रतावतरण क्रिया करे:—

कृतद्विजार्चनस्यास्य व्रतावतरणोचितं ।

वल्गाभरणमालयादिग्रहणं गुर्वनुज्ञया ॥ १२४ ॥

इस ही आज्ञाके अनुसार पूजनके मंत्रोंमें भी ऐसे मंत्र लिख दिये हैं जिनका अर्थ है कि अनादि कालके श्रोत्रियोंको समर्पण ( श्रोत्रिय एक प्रकारके वेदपाठी ब्राह्मण होते हैं ), देव ब्राह्मणको समर्पण और अच्छे ब्राह्मणको समर्पण । यथा—अनादिश्रोत्रियाय स्वाहा, देवब्राह्मणाय स्वाहा, सुब्राह्मणाय स्वाहा ( पर्व ४० श्लोक ३४, ३५ ) ।

आदिपुराणके इन सब कथनोंसे केवल यह ही सिद्ध नहीं होता है कि वेदपाठी ब्राह्मणोंका ही रूप देकर जैनब्राह्मण बनाये गये थे और

इस कारण उनको हिन्दुओंकी ही सब क्रियायें सिखा दी गई थीं; साथ ही यह भी मालूम होता है कि दक्षिण देशमें जैनराजाओंके समयमें वेदपाठी ब्राह्मणोंमेंसे ही कुछ लोगोंको फुसलाकर जैनी बना लिया गया था, उनकी वृत्ति, अधिकार और क्रिया आदि पहली ही कायम रखकर उनका नाम जैन ब्राह्मण रख लिया गया था, और यह प्रसिद्ध कर दिया गया था कि चौथे कालमें तो सब ही ब्राह्मण जैनी थे जिनको श्रीआदिनाथके समयमें अर्थात् युगकी आदिमें भरत महाराजने स्वयं पूजकर और दान आदि देकर ब्राह्मण माना था, किन्तु पंचम कालमें ये लोग भ्रष्ट होकर वेदके माननेवाले हो गये हैं। अर्थात् जैनब्राह्मण बननेसे ये लोग कोई नवीन पंथ या नवीन मार्ग ग्रहण नहीं करते हैं, किन्तु अपना प्राचीन धर्म अंगीकार करते हैं।

हमारे इस विचारकी पुष्टि आदिपुराणके उस कथनसे होती है, जहाँ जैनराजाओंको उपदेश देते हुए कहा है कि प्रजाको दुःख देनेवाले अक्षरम्लेच्छ अपने आसपास जो हों उनको उनकी कुलशुद्धि आदि करके अपने वशमें कर लेना चाहिये। राजासे इस प्रकार आदरसत्कार पाकर वे लोग फिर उपद्रव नहीं करेगे। यदि इस प्रकार उनका आदरसत्कार नहीं किया जावेगा तो वे रातदिन उपद्रव करते रहेंगे, और साथ ही इसके यह भी बताया है कि वेदपाठी ब्राह्मणोंको ही अक्षरम्लेच्छ कहते हैं। अर्थात् वेदपाठी ब्राह्मणोंका कुल शुद्ध करके उनको अपनेमें मिलाकर उनका आदरसत्कार करना चाहिए:—

प्रदेशे वाक्षरम्लेच्छान्प्रजाबाधाविधायिनः ।

कुलशुद्धिप्रदानायैः स्वसात्कुर्यादुपक्रमैः ॥ १७९ ॥

विक्रियां न भजंत्येते प्रभुणा कृतसत्क्रियाः ।

प्रभोरलब्धसम्माना विक्रियंते हि तैस्त्वंहं ॥ १८० ॥

तान्प्राहुरक्षरम्लेच्छा येऽमी वेदोपजीविनः ।  
अधर्माक्षरसम्पाठैर्लोकव्यामोहकारिणः ॥१८२॥

हमारे इस विचारकी सिद्धि पर्व ३९ में वर्णित दीक्षान्वय क्रियाके पढ़नेसे और भी अच्छी तरह हो जाती है। यद्यपि इस क्रियाका उपदेश भरत महाराजने तमाम अन्य मतियोंको जैनी बनानेके वास्ते ब्राह्मण वर्णकी स्थापनाके दिन अपन बनाये हुए ब्राह्मणोंको दिया है, परन्तु जब इस उपदेशकी अधिक गौरके साथ पढ़ा जाता है तो मालूम होता है कि सभी जातिके लोगोंको जैनी बनानेके वास्ते नहीं; किन्तु वेदके माननेवाले ब्राह्मणोंको ही जैनी ब्राह्मण बनानेके वास्ते यह क्रिया वर्णन की गई है।

सारांश इस दीक्षान्वय क्रियाका इस प्रकार है कि जब कोई मिथ्यादृष्टि जैन धर्मको स्वीकार करना चाहे तब वह मुनिमहाराज या गृहस्थाचार्यके पास आकर प्रार्थना करे कि, मुझे सच्चे धर्मका उपदेश दो, क्यों कि अन्य मतके सिद्धान्त मुझे दूषित मालूम होते हैं। धर्मक्रियाओंके करनेमें जो श्रुति अर्थात् वेदके वाक्य माने जाते हैं वे भी ठीक मालूम नहीं होते हैं, दुष्ट लोगोंके बनाये हुए ही प्रतीत होते हैं। (दुनियामें अनेक मिथ्यामत प्रचलित हैं। हिन्दुस्तानमें भी बौद्ध, नास्तिक आदि अनेक मत प्रचलित थे। नास्तिकोंका खंडन आदिपुराणमें ही कई स्थानों पर किया गया है; परन्तु यहाँ पर प्रार्थना करनेवाला केवल एक वेदमतकी ही निन्दा करता हुआ आता है, जिससे जान पड़ता है कि यह दीक्षान्वय क्रिया वेदके माननेवालोंको ही जैनी बनानेके वास्ते है। (प्रार्थना कर चुकने पर उसको समझाना चाहिए कि आपसचन ही मानने योग्य होता है और श्रीअरहंत भगवान् ही आप हैं। अरहंतके मतमें शास्त्रों, मंत्रों और क्रियाओंका बहुत अच्छी तरह निरूपण किया गया है।

जिसमें वेद, पुराण, स्मृति, चरित्र, क्रियाविधि, मंत्र, देवता-लिंग, आहार और शुद्धिका यथार्थ रीतिसे निरूपण किया है वही धर्म है, शेष सब पाखंड हैं। जिसके बारह अंग हैं और जिसमें श्रेष्ठ आचरणोंका वर्णन है, वह वेद है। जिसमें हिंसाका उपदेश हो वह वेद नहीं हो सकता, वह तो यमराजका वाक्य है। (वेद, स्मृति आदि ब्राह्मणधर्मके ही पारभाषिक शब्दोंका प्रयोग करने, क्रियामंत्र आदिका वर्णन करने और जैन शास्त्रोंको वेद बतानेसे स्पष्ट सिद्ध होता है कि वेदपाठी ब्राह्मणोंको ही फुसलाने और समझानेके वास्ते ये सब बातें सिखाई जा रही हैं।)

जिसमें हिंसाका निषेध है वही पुराण और धर्मशास्त्र है। वे पुराण और धर्मशास्त्र जिनमें हिंसाका उपदेश है धूर्तोंके बनाये हुए हैं। देवपूजा आदि आर्योंके करने योग्य छः कर्म ही चरित्र है। गर्भधानसे लेकर निर्वाणपर्यंतकी जो ५३ क्रियायें हैं वे ही ठीक क्रिया हैं। गर्भसे मरणपर्यंतकी जो क्रियायें अन्य मतमें कही गई हैं वे मानने योग्य नहीं हैं। इन ५३ क्रियाओंमें जो मंत्र पढ़े जाते हैं, वे ही सच्चे मंत्र हैं। प्राणियोंकी हिंसा करनेमें जिन मंत्रोंका प्रयोग किया जाता है वे खोटे मंत्र हैं। तीर्थंकर आदि देव ही शान्ति करनेवाले देव हैं, मांसभक्षी क्रूर देवता त्यागने योग्य हैं। निर्ग्रथपना ही सच्चा लिंग है, हरिणका चमड़ा आदि रखना कुलिंग है। मांसरहित भोजन करना ही आहारशुद्धि है, मांसभोजीको सर्वघाती समझना चाहिए। जिनेंद्र मुनि या स्वदारसंतोषी गृहस्थके ही कामशुद्धि हो सकती है और सब बहकानेवाले हैं। (इस सारे ही उपदेशसे प्रगट है कि वैदिक मतके ब्राह्मणको ही जैनी बनानेके वास्ते ये बातें सिखाई गई हैं।) इस प्रकार उपदेश पाने पर वह मिथ्या मार्गको छोड़ता है और सच्चे मार्गमें लगता है। उस समय गुरु ही उसका

पिता है और तत्त्वोंका ज्ञान होना ही संस्कार किया हुआ उसका गर्भ है जिससे वह भव्य पुरुष धर्मरूप जन्म धारण कर अवतीर्ण होता है। इस भव्य पुरुषकी यह अवतारक्रिया गर्भधान क्रियाके समान मानी जाती है।

इसके बाद वह व्रत ग्रहण करता है, और उसको श्रावककी दीक्षा दी जाती है, अर्थात् पूजनके पश्चात् गुरु मुद्राकी रीतिसे उसके मस्तकका स्पर्श करके उससे कहा जावे कि तू अब पवित्र हो गया है, फिर उसको नमस्कार मंत्र दिया जावे, इसके बाद वह मिथ्यादेवोंको अपने घरसे बारह निकाल दे, उन देवताओंसे कहे कि मैंने अपने अज्ञानसे इतने दिन तक बड़े आदरके साथ आप की पूजा की, अब मैं सिर्फ अपने ही मतके देवोंकी पूजा करूंगा; इस कारण क्रोध करनेसे कुछ लाभ नहीं है। आप अब किसी दूसरी जगह ही रहें। ऐसा कहकर वह उन देवताओंको किसी दूसरी जगह रख आवे। (इससे भी सिद्ध है कि नित्य पूजन करनेवाले वैदिक धर्मके ब्राह्मणकी ही जैनी बनानेके वास्ते यह क्रिया है, न कि साधारण लोगोंके वास्ते।)

इसके बाद वह द्वादशांग वाणीका अर्थ सुनता है, फिर चौदह पूर्वको भी सुनता है, फिर अन्य मतके ग्रन्थ देखता है, फिर उपवासके दिन आत्मध्यान करने लगता है, और फिर उसको जनेऊ दिया जाता है। (इससे भी सिद्ध है कि ब्राह्मणको ही जैनी बनानेके वास्ते यह उपदेश है। क्योंकि सर्व साधारणको अर्थात् शूद्र आदिको जनेऊ नहीं दिया जाता है। ब्राह्मणको जनेऊ देनेका यहाँ यह अर्थ है कि मिथ्या संस्कारके द्वारा जो उसने पहलेसे जनेऊ पहन रक्खा था वह निकाल दिया जावे और जैनधर्मके संस्कारके द्वारा उसको जनेऊ पहनाया जावे। इसी प्रकार उसका पहला विवाह भी

भी रद्द करके उसही स्त्रीके साथ दोबारा विवाह करनेका उपदेश है, जिसका कथन आगे आवेगा।) अब वह देवपूजा आदि षट्कर्म करने लगता है और अपना गोत्र और जाति आदि भी बदल लेता है। यथा:—

जैनेपासकदीक्षा स्यात्समयः समघोचितं ।

दधतो गोत्रजात्यादि नामांतरमतः परं ॥ ५६ ॥

—पर्व ३९ ।

उसका गोत्र और जाति आदि भी बदल देनेका मतलब यह मालूम होता है कि, वह फिर अपनी पहली ब्राह्मण जातिमें न मिल सके और दो चार पीढ़ी बीत जाने पर इस बातका कुछ भी पता न चल सके कि वह पहले कौन था।

फिर वह उपासकाध्ययन सूत्रको पढ़े, जिसमें श्रावकोंकी क्रियायें वर्णन की गई हैं। इसके पढ़ चुकनेके बाद वह गृहस्थ होता है ( इससे भी सिद्ध है कि वह ब्राह्मण ही है, जिसको इस प्रकार जैनी बनाया जा रहा है; क्योंकि धर्म-क्रियाओंको सीखनेके पीछे गृहस्थ होना यह ब्राह्मणका ही कार्य हो सकता है अन्यका नहीं। अन्य वर्णवालोंको तो अपने अपने वर्णका काम सीखनेके बाद गृहस्थ होना चाहिए।) फिर वह अपनी स्त्रीको भी समझा बुझाकर श्राविका बनाता है और उससे जैनधर्मके संस्कारोंके अनुसार दोबारा विवाह करता है। ( जैनधर्मके नवीन बनाये हुए संस्कारोंका प्रभाव बढ़ानेके वास्ते ही दोबारा विवाह करनेका तरीका निकाला गया होगा।) अर्थात् मिथ्यात्व अवस्थामें इसका जो विवाह हुआ था वह रद्द करके उसी स्त्रीके साथ जैन मंत्रों और क्रियाओंके द्वारा फिर विवाह करता है।

फिर वह भव्य पुरुष ऐसे श्रावकोंके साथ-जिनको वर्णलाभ हो चुका है और जो समान जीविका करनेवाले हैं—सम्बन्ध जोड़नेके वास्ते चार मुखिया श्रावकोंको बुलाकर अर्थात्

पंचोंको इकट्ठा करके प्रार्थना करे कि आप मुझको भी अपने समान करके मेरा उपकार करें, और कहे कि आप संसारसे पार करनेवाले देव ब्राह्मण हैं और संसारमें पूज्य हैं, आपकी कृपासे अब मुझको भी वर्णलाभ होना चाहिए। उसकी ऐसी प्रार्थना पर वे लोग कहें कि बहुत अच्छा, जिस तरह आपने कहा है वैसे ही होगा; क्योंकि आप सर्व प्रकार प्रशंसाके योग्य हैं। अन्य कोई द्विज ( ब्राह्मण ) आपकी क्या बराबरी कर सकता है? आप जैसे पुरुषोंके न मिलने पर हम लोगोंको समान जीविका करनेवाले मिथ्याहृष्टियोंके साथ ही सम्बन्ध करना पड़ता था। इस प्रकार उसको वर्णलाभ हो जाता है, अर्थात् वह भी उन लोगोंमें मिल जाता है।

इस वर्णलाभ क्रियाके पढ़नेसे इस विषयमें कोई भी संदेह नहीं रहता है कि यह दीक्षान्वय क्रिया वैदिक ब्राह्मणोंको ही जैनी ब्राह्मण बनानेके वास्ते वर्णन की गई है। क्योंकि वह नवीन जैनी जिनसे अपने शामिल कर लेनेकी प्रार्थना करता है, जैनी ब्राह्मण ही होने चाहिए, न कि साधारण जैनी। तभी तो वह उनसे यह कहता है कि आप संसारसे पार करनेवाले देव ब्राह्मण हैं और संसारमें पूज्य हैं। और स्वयम् भी वह जैन ब्राह्मण ही बना हो न कि साधारण जैनी, तब ही तो वह उनसे प्रार्थना कर सकता है कि कृपा करके मुझको भी आप अपने जैसा ही बना लीजिए, और तब ही तो वे लोग उससे कहेंगे कि अन्य द्विज अर्थात् और कोई ब्राह्मण तेरी बराबरी क्या कर सकते हैं?

देवब्राह्मण जिनसे वह अपनेको शामिल कर लेनेकी प्रार्थना करता है ऐसे ही होने चाहिए जो अन्यमतसे ही जैनी हुए हों। तब ही तो यह लिखा गया है कि वह नवीन जैनी ऐसे श्रावकोंके साथ सम्बन्ध करनेके वास्ते, जिनको वर्णलाभ हो चुका है, इस प्रकार वर्णलाभ करनेकी

कोशिश करे, और तब ही तो वे लोग उसको यह जवाब देते हैं कि तुम जैसे सम्यक्दृष्टियोंकी कर्मिके कारण ही हमको अपने समान जीविका करनेवाले अन्य मतियोंसे ( अर्थात् वैदिक ब्राह्मणोंसे ) सम्बन्ध करना पड़ता है । अर्थात् जब इस प्रकार होते होते जैनी ब्राह्मण अधिक हो जावेंगे तब हम अन्यमती ब्राह्मणोंसे बिलकुल ही सम्बंध तोड़ देंगे:—

वर्णलामस्ततोऽस्य स्यात्संबंधं संविधित्ततः ।

समानाजीविभिर्लब्धवर्णैरन्यैरुपासकैः ॥ ६१ ॥

चतुरः श्रावकान् ज्येष्ठानाह्वय कृतसत्क्रियान् ।

तान्ब्रूयादस्म्यनुग्राहो भवद्भिः स्वसमीकृतः ॥ ६२ ॥

यूयं निस्तारका देवब्राह्मणा लोकपूजिताः ।

अहं च कृतदीक्षाऽस्मि गृहीतोपासकव्रतः ॥ ६३ ॥

एवं कृतव्रतस्याय वर्णलामो ममोचितः ।

सुलभः सोऽपि युष्माकमनुज्ञानात्सधर्मगाम् ॥ ६४ ॥

इत्युक्तास्ते च तं सत्यमेवमस्तु समंजसं ।

स्वयोक्तं श्लाघ्यमेवैतत्कोऽन्यस्त्वत्सदृशो द्विजः ॥ ६५ ॥

युष्मादृशामलाम्भे तु मिथ्यादृष्टिभिरप्यमा ।

समानाजीविभिः कर्तुं संबंधोऽभिमतो हि नः ॥ ७० ॥

—पर्व ३९ ।

वर्णलामके इस कथनसे यह भी मालूम होता है कि जब अन्यमती ब्राह्मणोंको जैनी ब्राह्मण बनाना शुरू किया गया था, तब शुरूमें अपनी संख्या कम होनेके कारण और वर्णव्यवस्थाकी मान्यता अधिक होनेके सबब इन जैनी ब्राह्मणोंको अन्यमती ब्राह्मणोंसे ही विवाह आदि संबंध रखना पड़ता था, इसी कारण उस समय लाचार होकर इन जैनी ब्राह्मणोंको अन्यमती ब्राह्मणोंकी अनेक क्रियायें माननी पड़ीं, और इनके ऐसा करनेसे धीरे धीरे अन्य जैनियोंमें भी इन क्रियाओंका प्रवेश हो गया और फिर होते होते जैन ग्रंथोंमें भी इनका कथन होनेलगा ।

वर्णलाम होने पर वह नवीन जैनी देव-पूजादि षट्कर्म अर्थात् कुलचर्या करने लगता है और फिर जब वह अपनी वृत्ति और पठन-पाठनसे दूसरोंका उपकार करने लगता है, अर्थात् अन्य ब्राह्मणोंके समान यजमानोंकी सब क्रियायें कराने लगता है, प्रायश्चित्त आदि सब विधानोंको जान लेता है, वेद स्मृति और पुराण आदिका जानकार हो जाता है, तब वह गृहस्थाचार्य हो जाता है:—

विशुद्धस्तेन वृत्तेन ततोऽभ्येति गृहीशितां ।

श्रुताध्ययनसंपत्त्या परानुग्रहणक्षमः ॥ १३ ॥

प्रायश्चित्तविधानज्ञः श्रुतिस्मृतिपुराणवित् ।

गृहस्थाचार्यतां प्राप्तस्तदाधत्ते गृहीशितां ॥ १४ ॥

—पर्व ३९ ।

इन श्लोकोंसे स्पष्ट सिद्ध हो गया कि वेदपाठी ब्राह्मणोंको ही जैन ब्राह्मण बनानेके वास्ते यह दीक्षान्वय क्रिया बनाई गई है और श्रुति स्मृति पुराण आदिके अनुसार जो कुछ वृत्ति इन ब्राह्मणोंकी थी और जो जो कुछ क्रियायें ये लोग जैनी होनेसे पहले करते थे वा यजमानोंसे कराते थे, जैन होनेके पश्चात् भी उनकी वे ही वृत्तियाँ और क्रियायें कायम रखी गईं, यहाँतक कि उनकी वृत्तियों और क्रियाओंके नाम भी वही रहने दिये जो पहले थे । तब ही तो इस नवीन जैनीको गृहस्थाचार्य हो जाने और प्रायश्चित्तादि देनेका अधिकार प्राप्त कर लेनेके वास्ते श्रुति, स्मृति और पुराणोंकी जानकारी प्राप्त करनेकी आज्ञा इन श्लोकोंमें दी गई है ।

जैन ब्राह्मणको दस अधिकार प्राप्त कर लेनेका जो कथन इस लेखमें पहले किया गया है, और इन जैन ब्राह्मणोंको उपदेश देते समय जो वैदिक मतके पारिभाषिक शब्दोंका प्रयोग किया गया है तथा उनके अग्नि, और भूमि आदि देवताओंके पूजनेकी जो शिक्षा इन ब्राह्म-

गोंको दी गई है, इन सब बातोंको अर्थात् इस लेखको इस स्थान पर फिर दोबारा पढ़नेसे और इसीके साथ पहले लेखको भी पढ़ लेनेसे यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि पंचम कालमें जिस समय हिन्दुस्थानमें ब्राह्मणोंका जोर बढ़ गया था, वे लोग जैन और बौद्धोंसे पूरी पूरी घृणा करने लगे थे और इनमें वर्ण या जातिका भेद और गर्भाधान आदि क्रिया न होनेके कारण वे लोग इनको शूद्रोंसे भी घटिया मानते थे और ब्राह्मणोंका अधिक प्रचार और प्रभाव होनेके कारण जब कि जैनी लोग भी पठन पाठन आदि उनहीसे कराते थे, उनके अनेक संस्कार, अनेक क्रिया, और उनकी अनेक रीतियाँ मानने लगे थे और लाचार होकर बहुतसे कार्य उनहीसे कराते थे, तब किसी समय किसी जैनी राजाका आश्रय पाकर उनही ब्राह्मणोंमेंसे कुछ ब्राह्मणोंको फुसलाकर जैनी बनाया गया और उनसे वही काम लिया गया जो वे पहलेसे करते चले आये थे, अर्थात् उनको वैदिक ब्राह्मणके स्थानमें जैन ब्राह्मण बना लिया गया और अन्य जैनियोंको उनका यजमान बना दिया गया। इस समय भी जो जैनी ब्राह्मण दक्षिण देशमें मौजूद हैं, वे भी अन्य ब्राह्मणोंके समान ही जैन यजमानोंका काम करते हैं और प्रायः वे ही सब क्रियायें कराते हैं जो अन्य हिन्दुओंके यहाँ होती हैं।

स्वयम् आदिपुराणका कथन ही इस बातका साक्षात् सबूत होते हुए—कि ये ब्राह्मण पंचम कालमें ही बनाये गये हैं—उसका यह कथन किसी तरह भी माननेके योग्य नहीं हो सकता है कि चौथे कालके प्रारम्भमें ही भरत महाराजके द्वारा ब्राह्मण वर्णकी स्थापना हुई थी और यह सब उपदेश भरत महाराजने ही ब्राह्मण वर्ण स्थापन करनेके दिन ब्राह्मणोंको दिया था।

आदिपुराणके उस कथनका आशय यह है

कि भरत महाराजके द्वारा ब्राह्मण वर्णकी स्थापना होनेसे पहले ब्राह्मण वर्ण ही नहीं था, अर्थात् उस समय क्षत्री वैश्य और शूद्र ये ही तीन प्रकारके मनुष्य थे, ब्राह्मण कोई था ही नहीं। तब ही तो भगवान्के द्वारा तीन वर्णोंकी उत्पत्तिका वर्णन करके लिखा है कि अपने मुखसे शास्त्रोंको पढ़ानेवाले ब्राह्मणोंको भरत रचगा। पढ़ना पढ़ाना, दान देना लेना और पूजा करना कराना उनकी आर्त्तविका होगी। यह भविष्यद्वाणी करनेके पश्चात् आदिपुराणमें अगला श्लोक यह लिखा है कि शूद्र शूद्रकी ही कन्यासे विवाह करे, वैश्य अपने वर्णकी कन्यासे और शूद्रकी कन्यासे विवाह करे, क्षत्री अपने वर्णकी कन्यासे और शूद्रकी कन्यासे विवाह करे, और ब्राह्मण अपने वर्णकी कन्यासे विवाह करे, और ब्राह्मण अपने वर्णकी कन्यासे विवाह करे कभी अन्य वर्णकी कन्यासे भी कर ले:—

मुखतोध्यापयन् शास्त्रं भरतः स्वक्षयति द्विजान् ।

अधीत्यध्यापने दानं प्रतिक्षेज्यति तत्क्रियाः ॥२४५॥

शूद्रा शूद्रेण वोढव्या नान्या स्वां तां च नैगमः ।

वहेत्स्वाति च राजन्यः स्वां द्विजन्मा क्विच्चिताः ॥२४७॥

—पर्व १६ ।

भरतमहाराजके द्वारा ब्राह्मण वर्णकी स्थापनाका कथन तो स्वयम् उस उपदेशके कथनसे ही जड़ मूलसे उखड़ जाता है जो ब्राह्मण वर्णकी स्थापनाके दिन भरतमहाराजकी तरफसे ब्राह्मणोंको दिया जाना आदिपुराणमें वर्णन किया गया है, जैसा कि हमने इस लेखमें और इससे पहले लेखमें दिखलाया है; परन्तु इस बातका पता नहीं लगता है कि भरत महाराजके द्वारा ब्राह्मण बनाये जानेकी भविष्यद्वाणी और यह विवाहसम्बंधी आज्ञा जो उक्त श्लोकोंमें लिखी हुई है किसने दी और किस समय दी। श्रीभगवान्ने तो न यह भविष्यद्वाणी ही कही और



न यह आज्ञा ही दी; क्योंकि अर्धवैल तो आदिपुराणमें ही ऐसा नहीं लिखा, वरन् आदिपुराणमें तो ये दोनों श्लोक बिलकुल उधारेसे ही रक्खे हुए मालूम होते हैं। इसके सिवाय यदि श्रीभगवान्की तरफसे यह बताया जाता कि चौथा वर्ण ब्राह्मणका भरतके द्वारा स्थापन होगा और इसी कारण उस वर्णकी बाबत विवाहका नियम भी पहलेसे ही बता दिया गया होता, तो सब प्रजाको और विशेष कर भरतमहाराजको इसकी खबर जरूर होती, परन्तु ऐसा होनेकी अवस्थामें ब्राह्मण वर्ण स्थापन करनेके पश्चात् सोलह स्वप्न आने पर न तो भरतमहाराजको कोई घबराहट ही होती और न वे समवसरणमें जाकर श्रीभगवानसे ही यह कहते कि मैंने आपके होते हुए ब्राह्मणवर्ण बनाकर बड़ी मूर्खताका काम कर डाला है, यह कार्य योग्य हुआ है या अयोग्य, इस चिन्तामें मेरा मन डावाँडोल हो रहा है, आप कृपाकर मेरे मनको स्थिर कीजिए। और इसका उत्तर भी श्रीभगवान् वह न देते जो आदिपुराणमें लिखा गया है, अर्थात् वे यह न कहते कि तूने जो द्विजाका सन्मान किया है उसमें अमुक दोष है, किन्तु यही कहते कि हम तो पहले ही कह चुके थे कि तुम्हारे द्वारा ब्राह्मण वर्णकी स्थापना होगी और हम तो इन ब्राह्मणोंके विवाहका नियम भी पहले ही बता चुके हैं।

विश्वस्य धर्मसर्गस्य त्वयिसाक्षात्प्रणेतरि ।

स्थिते मयाऽतिबालिश्यादिदमाचरिते विभे ॥३२॥

दोषः कोऽत्र गुणः कोऽत्र किमेतत्संप्रतं न वा ।

दोलायमानमिति मे मनः स्थापय निश्चितौ ॥ ३३ ॥

साधुवत्सक्तं साधु धार्मिकद्विजपूजनं ।

किन्तु दोषानुषंगोऽत्र कोऽप्यस्ति स निशम्यतां ४५

—पर्व ४१ ।

इससे स्पष्ट सिद्ध है कि ये दोनों श्लोक वैसे

ही अप्रमाण हैं, जैसा कि भरत महाराजके द्वारा ब्राह्मण वर्ण स्थापन होनेका कथन ।

विवाहके सम्बंधमें ब्राह्मणोंके यहाँ बिलकुल यही नियम है जो उक्त श्लोक २४७ में वर्णन किया गया है। इससे मालूम होता है कि विवाहका यह नियम भी उन्हींसे उधार लिया गया है, बल्कि इससे भी ज्यादा यह मालूम होता है कि वेदपाठी ब्राह्मणोंको जैनी बनानेसे उनके अनेक रीतिरिवाजों, सिद्धांतों और देवताओंको स्वीकार करते हुए जैनियोंको क्षत्री, वैश्य और शूद्र ये तीन वर्ण भी ब्राह्मण वर्णको माननेके कारण ही मानने पड़े हैं, तबही तो जैनकथाग्रन्थोंमें इन वर्णोंके वे ही लक्षण माने गये हैं, जो वैदिक शास्त्रोंमें वर्णित हैं।

ब्राह्मणोंका सिद्धान्त है कि यह सारी सृष्टि ब्रह्माके द्वारा सृजी गई है। इस बातको वे अलंकारके तौर पर इस तरह वर्णन करते हैं कि, ब्राह्मण उसकी सृष्टिके मुख हैं, क्षत्री भुजा हैं, वैश्य धड़ हैं और शूद्र पैर हैं; और इसीको वे कभी कभी इस रूपमें भी वर्णन कर देते हैं कि ब्राह्मण ब्रह्माके मुखसे उत्पन्न हुए हैं, क्षत्री भुजासे, वैश्य धड़से और शूद्र पैरोंसे। शोक है कि कुछ ब्राह्मणोंको जैनी ब्राह्मण बनानेके कारण उनके ऐसे ऐसे सिद्धान्त भी जैनधर्ममें शामिल हो गये और सबसे ज्यादा शोक इस बातका है कि उनके अलंकारोंने जैनधर्ममें आकर वास्तविकताका रूप धारण कर लिया। तबही तो आदिपुराणमें बार बार श्रीआदिनाथ भगवान्को ब्रह्मा सिद्ध किया गया है और उनका यह सिद्धान्त स्वीकार करके कि जो ब्रह्माके मुखसे उत्पन्न हो वही ब्राह्मण है इस बातके सिद्ध करनेकी बारबार कोशिश की गई है कि तीर्थंकर भगवान्की वाणीको स्वीकार करनेसे जैनी ब्राह्मण ब्रह्माके ही मुखसे उत्पन्न हुए हैं (इसके वास्ते

देखो पहला लेख ) और इसी प्रकार अन्यवर्णोंके वास्ते यह बात बनानी पड़ी है कि भगवान्ने अपने दोनों हाथोंमें शस्त्र धारण करके क्षत्रियोंकी रचना की, क्योंकि जो हाथमें शस्त्र लेकर दूसरोंकी रक्षा करे वही क्षत्री है, फिर भगवानने अपने उरुओंसे यात्रा करना अर्थात् परदेश जाना दिखलाकर वैश्योंकी सृष्टि की, क्योंकि जलस्थल यात्रा करके व्यापार करना ही वैश्योंकी मुख्य आजीविका है और नीच कामोंमें तत्पर रहनेवाले शूद्रोंकी रचना भगवानने अपने पैरोंसे की, क्योंकि उत्तम वर्णवालोंकी शुश्रूषा करना आदि शूद्रोंकी आजीविका है:—

स्वदोभ्यां धारणे शस्त्रं क्षत्रियानसृजद्विभुः ।  
क्षतत्राणे नियुक्ता हि क्षत्रियाः शस्त्रपाणयः ॥२४३॥

उरुभ्यां दर्शयन्यात्रामस्राक्षाद्दण्डिजः प्रभुः ।  
जलस्थलादियात्राभिस्तद्वृत्तिर्वात्तया यतः ॥२४४॥  
न्यगृत्तिनियतान् शूद्रान् पद्भ्यामेवासृजत्सुधीः ।  
बर्णोत्तमेषु शुश्रूषा तद्दृष्टिर्नैकथा स्मृता ॥२४५॥

—पर्व १६ ।

गरज कहाँ तक कहाँ जाय जैन ब्राह्मण बनानेके लिए जैनधर्ममें हिन्दूधर्मकी वीसों बातें शामिल कर दी गईं और जैनधर्मका ढाँचा ही बदल दिया गया ।

\* \* \* \*

आदिपुराणके कथनानुसार आदिनाथ भगवानको केवलज्ञान होनेके पश्चात् भरत महाराज दिग्विजयको निकले थे । इस दिग्विजयमें उन्हें ६० हजार वर्ष लगे थे और उन्होंने इस विजययात्राके बाद ही ब्राह्मणवर्णकी स्थापना की थी । अर्थात् भगवानको केवलज्ञान उत्पन्न होनेके ६० हजार वर्ष पीछे ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति हुई है । ( देखो पर्व २४ श्लोक २, पर्व २६ श्लोक १-५, और पर्व ३८ श्लोक ३ से २३ तक । ) आदिपुराणमें यह भी लिखा है कि

युगकी आदिमें भगवानने उस समयके लोगोंको क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णोंमें विभाजित करके और उनको पृथक् पृथक् कार्य सिखलाकर कर्मभूमिकी प्रथा चलाई । ( देखो पर्व १६ श्लोक २४३-४५ ) इससे आगे २४६ वें श्लोकमें यह भविष्यद्वाणी की गई है कि चौथा ब्राह्मण वर्ण भरत बनावेगा । पदना पदना, दान देना लेना और पूजन करना कराना इस वर्णकी आजीविका होगी ।

आदि पुराणके उक्त कथनका आशय यही है कि भगवानके कैवल्यके ६० हजार वर्ष बाद-तक इस देशमें ब्राह्मणवर्णका नाम भी नहीं था, परन्तु इसी ग्रन्थकी कई कथाओंसे इस बातका स्पष्टन होना है ।

१. आदिनाथ भगवान् दीक्षा लेनेके एक वर्ष बाद जब चर्चा करते हुए हास्तिनापुर पहुँचे हैं, तब श्रेयांस राजाको कुछ स्वप्न आये थे और उनका फल उनके निमित्तज्ञानी पुरोहितने बतलाया था । स्वप्नके फल बतलानेके लिए और भी कई स्थानोंमें पुरोहितोंसे निवेदन किया गया है । अब यह देखना चाहिए कि ये किस वर्णके होते थे । ब्राह्मणेतर् तीन वर्णोंके तो ये हो नहीं सकते । क्योंकि इन तीन वर्णोंके जो लक्षण उक्त ग्रन्थको मान्य हैं वे उक्त पुरोहितोंमें घटित नहीं हो सकते । अतः ये ब्राह्मण वर्णके ही थे और पर्व १६ के २४६ वें श्लोकमें ब्राह्मणोंके कर्मोंसे इनके कर्म बराबर मिलते हैं । आजकल भी ब्राह्मण वर्णके ही पुरोहित होते हैं । गरज यह कि राजा श्रेयांसका पुरोहित ब्राह्मण ही था, और जैन ब्राह्मण था । क्योंकि उसने स्वप्नका फल बतलाते हुए कहा था कि आज श्रीभगवान् णापके घर आवेंगे और उनकी योग्य विनय करनेसे बड़ा भारी पुण्य प्राप्त होगा । ( देखो पर्व २० श्लोक ३९-४३ । ) इससे सिद्ध होता है कि

भगवानके दीक्षा लेनेके एक वर्ष पीछे, अर्थात् ब्राह्मणवर्णकी स्थापनाके लगभग ६० हजार वर्ष पहले भी, ब्राह्मणवर्ण था और श्रेयांसका पुरोहित उसी वर्णका था ।

२. भरतमहाराजके दरबारके रत्नोंमें एक रत्न पुरोहित भी था, जिसका नाम बुद्धिसागर था । लिखा है कि सारी धर्मक्रियायें और देवसम्बन्धी इलाज उसके अधीन थे और वह बड़ा भारी विद्वान् था । यथा:—

बुद्धिसागर नामास्य पुरोधः पुरुधीरभूत् ।  
धर्म्या क्रिया यदायत्ता प्रतीकारोऽपि दैविके ॥१७५॥  
—पर्व ३७ ।

इससे मालूम होता है कि भरतमहाराजकी सारी धर्मक्रियायें यही करता कराता था । यह अयोध्यानगरमें ही पैदा हुआ था और भरतमहाराजकी दिग्विजयमें बराबर साथ रहा है । 'प्रतीकारोऽपि दैविके' पदसे जान पड़ता है कि वह देवोंके वश करनेमें निपुण था, अर्थात् मंत्रसिद्धि आदिके कार्य भी करता था । २२ वें पर्वके ४५-५५ श्लोकोंमें लिखा है कि दिग्विजयके शुरूमें ही जब भरतजी लवणसमुद्रके किनारे पहुँचे तब मागधदेवको जीतनेके लिए उन्होंने उपवास किया, मंत्रतंत्रोंसे हथियारोंका संस्कार किया और अनेक क्रियायें करके पुरोहितके सामने पंचपरमेष्ठीका पूजन किया ।— 'पुरोधोऽधिष्ठितः पूजां स व्यघात्परमोष्ठिनां ।' आगे इस पुरोहितने भरतको मंगल आशीर्वाद दिया है और उनकी विजयकामना की है । इसके बाद सिन्धुनदीके संगम-स्थलके देवको जीतनेके समय तो स्पष्ट ही लिख दिया गया है कि समस्त विधिविधानके जाननेवाले पुरोहितने मंत्रोंके द्वारा विधिपूर्वक जिनेन्द्रदेवकी पूजा की और फिर गन्धोदक मिश्रित शेषाक्षतोंसे चक्रवर्तीको पुण्याशीर्वाद दिया । इन सब बातोंसे खूब अच्छी तरह सिद्ध हो जाता है कि

भरतजीका पुरोहित जैन ब्राह्मण ही था और उन्हींके सदृश जैन ब्राह्मण था जिनका इस कथनके ६० हजार वर्ष पीछे भरतजी द्वारा बनाया जाना बतलाया जाता है ।

भोगभूमिकी रीतिके समाप्त होने पर भगवानने विचार किया कि पूर्व और पश्चिम विदेहमें जो स्थिति वर्तमान है, प्रजा अब, उसीसे जीवित रह सकती है । वहाँ पर जिस प्रकार षट्कर्मोंकी और वर्णाश्रम आदिकी स्थिति है, वैसी ही यहाँ होनी चाहिए । इन्हीं उपायोंसे इनकी आजीविका चल सकती है, अन्य कोई उपाय नहीं है । इसके बाद इन्द्रने भगवानकी इच्छाके अनुसार नगर, ग्राम, देश आदि बसाये और भगवानने प्रजाको छह कर्म सिखलाकर क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णोंकी स्थापना की । (देखो पर्व १६, श्लोक १४२-९० ।)

इससे मालूम होता है कि विदेहोंमें तीन ही वर्ण हैं । क्योंकि भगवानने युगकी आदिमें पूर्व पश्चिम विदेहोंके अनुसार ही प्रवन्ध किया था, और प्रजाको तीन वर्णोंमें विभाजित किया था । यदि विदेहोंमें ब्राह्मण वर्ण भी होता तो भगवान् यहाँ भी उसे रचते । इससे सिद्ध है कि ब्राह्मण वर्णकी स्थापना दुनियासे निराली और बिलकुल गैरजरूरी बात थी । यदि ब्राह्मणवर्ण किसी कामका होता, तो विदेहोंमें वह भी अवश्य होता । भरत महाराजके द्वारा इसकी स्थापना केवल धार्मिक आवश्यकताके लिए बतलाई जाती है, न कि किसी लौकिक सिद्धिके लिए, और विदेह क्षेत्रोंमें सर्वदा ही चौथा काल रहता है, अतएव ऐसी कोई धार्मिक प्रवृत्ति हो ही नहीं सकती जो विदेहोंमें न हो । इससे मानना पड़ेगा कि यदि भरतके द्वारा ब्राह्मणवर्णकी स्थापना होनेकी बात सत्य है तो उन्होंने चौथे कालकी रीतिको उल्लंघन करके व्यर्थ ही इसे बनाया, अथवा यह कहना होगा कि इस वर्णकी स्थापना चौथे

कालकी बात ही नहीं हो सकती है, यह वर्ण पाँचवें कालमें ही बना है। भरत महाराजके सिर इसके बनानेका दोष व्यर्थ ही मढ़ा जाता है।

जिस समय भगवानने प्रजाको तीनों वर्णोंके जुदे जुदे काम सिखलाये थे उस समय यदि ब्राह्मण वर्ण बनानेकी जरूरत होती, तो कोई कारण नहीं है कि वे उन्हें न बनाते। यदि कोई ऐसी ही बात होती जिससे बहुत दिन पीछे भरतके द्वारा ही उनका बनाया जाना उचित होता, तो वे भरतको इस बातकी आज्ञा देते कि अमुक समयमें अमुक रीतिसे ब्राह्मण वर्णकी स्थापना करना। यदि ऐसा होता तो १६ अनिष्ट स्वप्नोंके आने पर भरतजीको न तो किसी प्रकारकी चिंता होती और न वे भगवानके समक्षमें यह निवेदन ही करते कि आपके होते हुए भी मैंने यह कार्य मूर्खतावश कर डाला है और अब इस कार्यकी योग्यता या अयोग्यताकी चिन्तासे मेरा मन ढाँढौल हो रहा है। (पर्व ४१ श्लोक ३२-३३।) इससे मालूम होता है कि ब्राह्मण वर्णकी स्थापना ऐसा कार्य नहीं था जो होना ही चाहिए था। भरतजीने यह व्यर्थ ही अटकलपच्च कर डाला था।

जैनशास्त्रोंसे मालूम होता है कि यहाँ अनन्त वार चौथा काल आया है और अनन्त वार कर्मभूमिकी रचना हुई है। परन्तु मालूम होता है कि इससे पहले ब्राह्मण वर्णकी स्थापना कभी किसी भी कर्मभूमिकी रचनाके समय नहीं हुई। यदि ऐसा होता तो भरत महाराजके पूछने पर भगवान् यही उत्तर देते कि इसमें घबड़ानेकी कोई बात नहीं है, क्यों कि ऐसा तो सदा ही होता आया है—चौथे कालमें ब्राह्मणवर्ण पहले भी होता रहा है; परन्तु उन्होंने ऐसा उत्तर न देकर यही कहा कि तुमने जो साधुसमान व्रती श्रावकोंका सत्कार किया, सो इस समय तो अच्छा ही किया है, चौथे कालमें तो ये लोग धर्ममें

स्थिर रहेंगे; परन्तु आगे इनसे बड़े बड़े अनर्थ होंगे। (देखो पर्व ४१ श्लोक ४३-५७।)

भरतजीने ब्राह्मण वर्णकी स्थापना इस लिए नहीं की कि प्रजाको उसकी आवश्यकता थी। यदि ऐसा होता तो स्थापनाके प्रकरणमें यह बात अवश्य लिखी जाती। वहाँ ता इससे विपरीत यह लिखा है कि उन्होंने अपना सारा धन परोपकारमें लगानेके लिए यह कार्य किया था। (पर्व ३८, श्लोक ३-८।)

उपासकाध्ययनसूत्रमें भी—जो द्वादशांग वाणीका सातवाँ अंग है और जिसमें गृहस्थोंकी सारी क्रियाओंका वर्णन है—ब्राह्मणवर्णका जिकर नहीं मालूम होता। क्योंकि आदिपुराणके कथनानुसार ब्राह्मणवर्णकी स्थापनाके समय भरतजीको इस उपासकाध्ययनका ज्ञान था। यदि इस अंगमें ब्राह्मणवर्णका कथन होता तो भरतजीको भगवानके समक्ष इस बातकी घबड़ाहट न होती कि ब्राह्मणवर्णकी स्थापनाका कार्य मुझसे योग्य हुआ है या अयोग्य, और वे भगवानसे स्पष्ट शब्दोंमें कहते कि मैंने सातवें अंगके अनुसार ब्राह्मणवर्ण स्थापित किया है। उन्होंने तो केवल यही कहा है कि मैंने उपासकाध्ययनसूत्रके अनुसार चलनेवाले 'श्रावकाचारचंचु' पुरुषोंको ब्राह्मण बनाया है। (पर्व ४१ श्लोक ३०।)

इन सब बातोंसे यह सिद्ध होता है कि न तो विदेहक्षेत्रोंमें ही ब्राह्मण वर्ण है—जहाँ सदा ही चौथा काल रहता है, न भरतक्षेत्रमें सदासे ब्राह्मणवर्णकी स्थापना होती आई है, न द्वादशांगवाणीमें ही इस वर्णका उल्लेख है, न भगवान् आदिनाथने इसे बनाया और न उनकी आज्ञाके अनुसार ही भरतने इसकी स्थापना की। उन्होंने इसे स्वयं ही अटकलपच्च, दूसरे शब्दोंमें जैनधर्मसे विरुद्ध, बना डाला था।

अन्तमें हम अपने पाठकोंसे इस लेखके दोनों भागोंको फिरसे एक वार बँचनेकी प्रार्थना

करते हैं और इतना और सूचित कर देना चाहते हैं कि हमने इस लेखमें आदिपुराणके उस कथन पर बहस नहीं की है जिसमें ब्राह्मण वर्णकी उत्पत्तिकी विधि लिखी है । उस कथन पर तो इतनी अधिक शंकायें उत्पन्न होती हैं कि यदि उन सब पर विचार किया जाय तो इससे भी अधिक लिखना पड़े । परन्तु हमें आशा है कि अब हमें उन बातोंको लिखना न पड़ेगा, इस लेखको पढ़नेके बाद हमारे भाई स्वयं ही उन पर विचार कर लेंगे ।

## विचित्र ब्याह ।



( लेखक, श्रीशुत पं० रामचरित व्या० । )

### पञ्चम सर्ग ।

मेरे सुतको कोई सज्जन,  
दे देता जो कन्या,  
तो मैं पुत्रवधुको पाकर,  
जगमें होती धन्या ।  
इसी सोचमें पड़ी सुशीला,  
तनिक नहीं सोती थी,  
विकल हुई रहती थी हरदम,  
मन-ही-मन रोती थी ॥ १ ॥  
रत्नाकरसे पंगु रत्नको,  
कैसे पा सकता है ?  
पुण्य-हीन जन पुण्य-लोकमें,  
कैसे जा सकता है ?  
भला मनोरथ क्यों पूरा हो,  
धन-विहीनका जगमें,  
कल्पवृक्ष क्या उग सकता है,  
कभी मरुस्थल-मगमें ? ॥ २ ॥  
पर उद्यमके बल उद्योगी,  
सब कुछ कर सकते हैं,  
वे न विघ्नवाधाओंसे कुछ,  
मनमें डर सकते हैं ।  
चाहें तो वे चन्द्र सूर्यको,

गेंद बना दे करका,  
अपनेकी तो बात अलग है,  
खेद मिटादे परका ॥ ३ ॥  
अबलाको भी प्रबला करता,  
समय विलक्षण क्षणमें,  
चन्दन-कण भी मिल जाता है,  
कभी अग्निके कणमें ।  
किसी बातको कभी असंभव,  
कहना नहीं भला है,  
पलमें निबल सबल हो जाते,  
चल जाती अचला है ॥ ४ ॥  
प्रथम चाहती रही सुशीला,  
धर्म-ब्याह सुतका हो ।  
जिस कारणसे हँसी न हो या,  
पाप धर्मच्युतका हो ।  
हरिसेवकको किन्तु देखने,  
कोई कभी न आया ।  
हा ! निधन बुधको भी जगमें,  
किसने कब अपनाया ? ॥ ५ ॥  
धनेहीना थीं यद्यपि वह पर,  
उसने मनमें ठाना,  
घर बेचूंगी ब्याह करूंगी,  
सुतका निज मन माना ।  
निधनकी कन्याका उसने,  
झट पट पता लगाया,  
रूपचन्दको किसी युक्तिसे,  
अपने पास बुलाया ॥ ६ ॥  
निरुत सुशीलाके निज घरसे,  
रूपचन्द तब आया,  
और सुताका उसने आकर,  
लक्ष्मी नाम बताया ।  
अति लोभी बनिया था उसका,  
लोभ नगरमें घर था,  
उभय लोकमें पाप, अयशका,  
उसे न कुछ भी डर था ॥ ७ ॥  
कहा सुशीलाने उससे तब,  
अपना हाल बिनशसे,  
फिर हरिसेवकके गुणको भी,  
कथन किया अति नयसे ।

पर लक्ष्मीको संत मेंतमें,  
 देने कहा न उसने,  
 हाय ! धर्मको नहीं गवाँया,  
 लोभ-विवश हो किसने ? ॥ ८ ॥  
 कहा सुशीलाने तब दृढ हो,  
 क्या लोगे कन्याका दाम,  
 जो माँगोगे मैं देखूँगी,  
 चाहे बिक जावे मम धाम ।  
 किन्तु साहजी ! मेरी आर्थिक,  
 दशा देख करके कहना,  
 केवल लोभ-विवश मत होना,  
 दयाविवश भी हो रहना ॥ ९ ॥  
 जो कुछ मेरे घर है उसको,  
 सुता आपकी पावेगी,  
 और उसीसे जैसे तैसे,  
 अपने काम चलावेगी ।  
 इसी लिए तुम खूब समझकर,  
 वर कन्या पर देना ध्यान,  
 अपने स्वार्थसहित मेरे भी,  
 कार्य पूर्ण करना मतिमान ॥ १० ॥  
 रूपचन्द बोला तब यों,  
 भला पिघलता वह कब यों ।  
 चाहे तुम बेंचो निज धाम,  
 मुझको है रूपसे काम ॥ ११ ॥  
 भूखों कन्या मर जावे,  
 जली भाड़में वर जावे ।  
 चाहे मैं होऊँ वदनाम,  
 मुझको है रूपसे काम ॥ १२ ॥  
 मुझे पाँच सौ दे देना,  
 लक्ष्मीको तुम ले लेना ।  
 छोड़ूँगा मैं नहीं छदाम,  
 मुझको है रूपसे काम ॥ १३ ॥  
 चाहे वर गुणवाला हो,  
 गौरा हो, या काला हो ।  
 बूढ़ा हो, या युवक ललाम,  
 मुझको है रूपसे काम ॥ १४ ॥  
 ऊँच नीचका भेद नहीं,  
 किसी बातका खेद नहीं ।

सबके जनक एक हैं राम,  
 मुझको है रूपसे काम ॥ १५ ॥  
 मेरा जीवन है कलदार,  
 मेरा तन मन है कलदार ।  
 जपूँ उसे ही आठों याम,  
 मुझको है रूपसे काम ॥ १६ ॥  
 रूपयेवाले मानव हैं,  
 धन-विहीन जन दानव हैं ।  
 इसमें कुछ भी नहीं कलाम,  
 मुझको है रूपसे काम ॥ १७ ॥  
 रूपये जब मेरे होंगे,  
 पर भी तब मेरे होंगे ।  
 तब मैं पाऊँगा विश्राम,  
 मुझको है रूपसे काम ॥ १८ ॥  
 रूपया जब मिल जावेगा,  
 हृदय-कमल खिल जावेगा ।  
 उसके बिना हुआ हूँ क्षाम,  
 मुझको है रूपसे काम ॥ १९ ॥  
 मुझे काम क्या झगड़ेसे ?  
 पुण्य, पापके रगड़ेसे ।  
 जगमें कुछ भी है न हराम,  
 मुझको है रूपसे काम ॥ २० ॥  
 कहा सुशीलाने सुनिए,  
 रूपयोंमें कुछ कम करिए ।  
 मुझमें उतनी शक्ति नहीं,  
 मेरी है बस विनय यही ॥ २१ ॥  
 मेरे मनके दुःख हरो,  
 वर कन्या पर दया करो ।  
 फिरसे कहिए ब्रह्म विचार,  
 जिसमें होवे बेड़ा पार ॥ २२ ॥  
 रूपचन्द तब तनक गया,  
 उसने बदला रंग नया ।  
 यदि सुतका करना है न्याह,  
 पूर्ण करो तब मेरी चाह ॥ २३ ॥  
 जो मैं मुखसे कहता हूँ,  
 उस पर दृढ़ हो रहता हूँ ।  
 झूठ बोलना ठीक नहीं,  
 मैं जाता हूँ और कहीं ॥ २४ ॥

मम कन्या गुण-मंडी है  
मनो दर्शनी हुंडी है ।  
उसको कहीं भँजा लूंगा,  
किन्तु नहीं तुमको दूँगा ॥ २५ ॥  
जैसी लक्ष्मी सुन्दर है,  
हरिसेवक वैसा वर है ।  
तदपि पाँच सौ में लूंगा,  
तभी सुताको मैं दूँगा ॥ २६ ॥  
बोला, अब मैं जाता हूँ,  
सत्य शपथ मैं खाता हूँ ।  
कम न करूँगा कौड़ी एक,  
अपनी ही रक्खूँगा टेक ॥ २७ ॥  
बिक जावेगी सुता कहीं,  
प्राहककी है कमी नहीं ।  
जो कहना हो साफ कहे;  
मत सोचो, मत मौन रहो ॥ २८ ॥  
कहा सुशीलाने कर जोड़,  
जो न आप कुछ सकते छोड़ ।  
तो फिर क्यों होते हैं रुष्ट,  
द्रव्य लीजिए रहिए तृष्ट ॥ २९ ॥  
हरिसेवकका करिए व्याह,  
अपनी पूरी करिए चाह ।  
बात आपकी है संजूर,  
चिन्ता आप कीजिए दूर ॥ ३० ॥  
यदि तुमको करना है काज,  
रोक रुपैया दो सौ आज—  
देकर मुझे बयाने दो,  
खाली हाथ न जाने दो ॥ ३१ ॥  
हुई व्यग्र वह बेचारी,  
क्योंकि अनाथा थी नारी ।  
बोली बड़ी विनय करके,  
आँखोंमें आँसू भरके ॥ ३२ ॥  
रुपये दूँगी दो दिनमें,  
चिन्ता मत करिए मनमें ।  
आज कहीं मैं पाऊँगी,  
कर्ज कहींसे लाऊँगी ॥ ३३ ॥  
दो दिनमें फिर आवें आप,  
दो सौ ले जावें चुपचाप ।

करिए मेरे पर विश्वास,  
तनिक न होवें आप उदास ॥ ३४ ॥  
रूपचंद तब खड़ा हुआ,  
किडक झिडक कर कड़ा हुआ ।  
फिर 'अच्छा' कह लौटा गेह,  
दिखा लोभके झूठे स्नेह ॥ ३५ ॥  
दो दिवसोंके बाद वहाँ पर फिर वह आया,  
उसने पाकर द्रव्य चित्तमें अति सुख पाया ।  
रूपचन्द था बड़ा मतलबी और सयाना,  
उसने पलमें किया व्याहका ठीक ठिकाना ।  
वह रुपये लेकर घर गया,  
सुचित सुशीला हो गई ।  
मानो हरिसेवक-व्याहकी,  
चिन्ता उरसे खो गई ॥ ३६ ॥

### षष्ठ सर्ग ।

रुपये लेकर रूपचन्द जब घर पर आया,  
उसने प्रेमसेमत त्रियोंको निकट बुलाया ।  
रुपये देने लगा उसे तो वह हँस बोला,  
कहिए किसने आज आपकी भर दी झोली ।  
किसभाँति आपको एकदम, इतने रुपये मिल गये  
क्यों अहो अचानक व्योममें,  
अमित कमल-दल खिल गये ॥ १ ॥  
विना मेघकी वृष्टि हुई है आज कहाँसे ?  
महा दीनकी आज मिला है राज कहाँसे ?  
गरल-सिन्धुसे सुधा-कुण्ड कैसे निकला है ?  
दुर्बिधिका हृदय आज कैसे पिघला है ?  
सच कहिए कैसे द्रव्य ये आज मिले हैं आपको ।  
सुरलोक ओक कैसे अहो आज मिला है पापको ? २  
दावानलसे शीत समीरण कैसे आया ?  
नेत्रहीनने दिव्य दृष्टिको कैसे पाया ?  
पानीमें उत्पन्न हुआ है मक्खन कैसे ?  
स्नेह-दरमें प्रकट हुआ है कश्चन कैसे ?  
दिननाथ नाथ । कैसे उगा, आज प्रतीची गोदमें ?  
किस विषये किशुक-कुसुम भी, आज सना आमोदमें ? ३  
हँसकर बोला रूपचन्द तब गर्वसहित हो,  
वही काम है ठीक जिसे करनेसे दित हो ।  
जिसकी घरनी रमा और लक्ष्मी कन्या हो,  
उसकी जीवन-शक्ति नहीं कैसे धन्या हो ?

किस अचरजमें तुम हो पड़ी, रमा तुम्हारा नाम है ।  
सुख-भोग करो तुम आजसे, सबका दाता राम है ॥४॥

प्रिये ! एकसे दिवस किसीके कभी न बीते,  
सर सूखेंगे भरे, भरे फिर होंगे रीते ।

सदा अंधेरी रात कभी क्या हो सकती है ?

पति-वियुक्त हो सदा न चकई रो सकती है ।

है हारावादी लग रही ( ? ) सदा पतन उल्थानका ।

अपमानित भी होगा कभी, मनुज पात्र सम्मानका ५

वही मनुज है निपुण धनी जो मानी होवे,

वही कूप है जहाँ सुशीतल पानी होवे ।

वही वृक्ष है श्लाघ्य जहाँ फल फूल लगे हों,

वही काव्य है जहाँ पद्य नवरसों पगे हों ।

है धन्य वसुमती भी वही देश-भक्त रहते जहाँ,

है वही सभा भी धर्मकी सभ्य सत्थ कहते जहाँ ॥६॥

धन विलोक कर लोट पोट मुनिमन होता है,

सबके दुर्गुण शीघ्र एक धन ही खोता है ।

सब कामोंमें सदा द्रव्य है बड़ा सहायक,

सब लायक भी दीन कहा जाता नालायक ।

बाहे कैसे हा मनुज हो, धन पर जिसके पास है ।

है धन्य वही भी, है हुआ-त्रिभुवन उसका दास है ७

धनी मनुजके पास धर्म दौड़ा आता है,

धनी मनुजके द्वार गुणी धके खाता है ।

निर्बल भी धनवान भीमके सम होता है,

निर्धन जन क्या कभी मृतकसे कम होता है ?

इस हेतु किसी विध द्रव्यका संग्रह करना चाहिए ।

मनमें जगके अपवादस कभी न उरना चाहिए ॥८॥

इतने रुपये मिले और भी शीघ्र मिलेंगे,

मुझे देखकर रमे, शत्रुके पैर हिलेंगे ।

गहने पहने रहो चैनसे दिवस बिताओ,

सूतो लंबी तान खूब खाओ खिलवाओ ।

अब कभी किसीके पास जा, कर फैलाना है नहीं ।

सुख कर लो, नश्वर देहका तनिक ठिकाना है नहीं ॥९॥

क्या पाओगी पूछ हाल रूपयोंके प्यारी,

मेरी गति है गुप्त रीति है जगसे न्यारी ।

कभी न मनकी बात विज्ञ सबसे कहते हैं,

करते हैं निज काम मौन होकर रहते हैं ।

चुप चाप रहो लो यत्नसे रूपयें रक्खो पासमें ।

अबसे भी अपने समयको खरचो हास विलासमें ॥१०॥

किन्तु हठीली रमा तुरत मचला कर बोली,

उसने मानो ब्रेह कपटकी झोली खोली ।

मुझसे तो तुम बात कभी भां न थे छिपाते,

कहते थे वृत्तान्त सभी जब घर थे आते ।

प्रिय ! आज तुम्हें क्या हो गया, क्यों धन पा बौरा गये

गिरगिटसे मेरे साथ क्यों, रंग बदलते हो नये ॥११॥

रुपये पाये कहाँ आपने, मुझसे कहिए,

विना बताये आप मौन होकर मत रहिए ।-

बहलावा दे मुझे रिज्ञाना उचित नहीं है,

भला कपटकी बात छिपी क्या कभी कहीं है ।

मुझसे सब कच्चे हालको, कहिए देर न कीजिए ।

अब वृथा विछा छल-जालको, मुझको जेर न कीजिए ॥

कहिए सच्ची बात किसासे मैं न कहूँगी,

जो न कहोये आप, न जीतो कभी रहूँगी ।

मुझसे छिप यदि काम करोगे दुख पाओगे,

होकर मुझसे हीन कभी क्या सुख पाओगे ?

यदि कुछ भी मुझमें ब्रेह है, तो सब बात बताइए ।

यह द्रव्य कहाँ कैसे मिला, वृथा न बात बढाइए ॥

रूपचन्द्रको ज्ञात रही महिमा लोचनकी,

इसी लिए कुछ और चक्रकी चलीन शठकी :

बोला वह हो विद्वान् बात सुन रमे, ध्यानसे,

पर सुन कर तू उसे न होना हीन ज्ञानसे ।

यदि जगमें मेरी बात वह, किसी भाँति खुल जायगी :

तो जीवनभर मम साथमें, विविध भाँति दुख पायगी ॥

लक्ष्मीका मैं ब्याह शीघ्र ही कहीं करूँगा,

सुता ब्याहके साथ गेहका दैन्य हूँगा ।

पर उसको कुछ कष्ट नहीं होने पावेगा,

और स्वकुलका नाम नहीं धुलने पावेगा ।

जो चतुरोंका सदुपाय है मैंने भी सोचा वही ।

मर जाय साँप जिसमें प्रिये, लाठी भी टूटे नहीं ॥१५॥

हरिसेवक है नाम एक सुन्दर बालकका,

मानो वह अवतार हुआ है रति-पालकका ।

उसका है अभिराम धाम बेनाम नगरमें,

जननी उसकी एक सुशाला है उस घरमें ।

लक्ष्मीका पति होगा वही, मैंने यह स्थिर कर लिया ।

उसकी ही माताने मुझे, इन रूपयोंको है दिया ॥१६॥

अभी तीन सौ और वही देनेवाली है,

सुतका सज धज साथ ब्याह करनेवाली है ।



आवेगी बारात यथा सबके घर आती,  
भेद खुलेगा नहीं, करेंगे क्या उरपाती ।  
यदि रमा ! तुम्हारी राय हो और बढ़ाऊँ दामको ।  
मैं कर लेता हूँ युक्तिसे अति टेढ़े भी कामको ॥१७॥

हाय हाय क्या किया लोभ-वश होकर तुमने,  
डुबा दिया निजवंश धर्मको खोकर तुमने ।  
मुखमें कालिख लगा हूँ क्यों मरे नहीं तुम  
जग-निन्दासे कुल-कुठार क्यों डरे नहीं तुम,  
बह दनुज तुल्य है मनुज जो करता कुरित कर्म है ।  
शठ, उभयलोकमें जीवका सच्चा साथी धर्म है ॥ १८ ॥

कन्या-विक्रय आत्म-घातसे न्यून नहीं है,  
गो-घातकसे सुता-विघातक आघक कहाँ है ।  
करके कन्या-घात कहे तुम कहाँ रहोगे,  
घोर पापके भार मला किस भौंति सहोगे ?  
यदि सुता-बासको बेंचकर, पेट तुम्हें भरना रहा ।  
तो विष मक्षण कर क्यों नहीं, इष्ट तुम्हें मरना रहा ॥१९॥

इन रूपयोंको अधिक दूपाइलसे भी जानो,  
फेंको इनको पूरा बरात बेरी तुम मानो ।  
धर्म-हीनके कभी दान कर्म बुरे नहीं हैं,  
कभी किसीके पाप किसी विष से नहीं हैं ।  
उस जीवनेको धिक्कार है, जो विन्दित हो लोभमें ।  
जो मर्यादा लंघन करे, क्यों न पड़े वह शोकमें ॥२०॥

पुत्र पुत्रियोंमें न भेद पशु भी रखते हैं,  
सुत-सुतोंको तुल्य पखेरू भी लखते हैं ।  
हा ! उनसे भी मूढ़ हुए किस भौंति बता दो  
कन्या-विक्रय पाप न है किस भौंति जता दो ।  
जो पिता भरोसे है उसे रक्षित रखना धर्म है ।  
किस भौंति उसे हो बेंचते तुमको तनिक न शर्म है ॥२१॥

निज आत्माको बेंच देहको क्या सुख दोगे,  
दुख पावोगे स्वयं उषे नाहक दुख दोगे ।  
लक्ष्मीका भवितव्य पड़ा है हाथ तुम्हारे,  
रह जावेगा अन्त धर्म ही साथ तुम्हारे ।  
इस लिए धर्म मत छोड़िए, चाहे कुछ भी क्यों न हो ।  
सुख मिला पापियोंको कहाँ ? दुखको सुख समझे रहो ।  
महापापका वाप लोभको कहते हैं सब,  
इसी लिए बुध दूर लोभसे रहते हैं सब ।  
कन्याका बलिदान द्रव्यके लिए न करिए,  
करिए उस पर दया पापसे मनमें डरिए ।

लक्ष्मीको सुख पहुँचाइए सदा दान सम्मानसे ।  
अब भी कुछ बिगड़ा नहीं रहित हुए क्यों ज्ञानसे? २३ ।  
रूपचन्द निर्लेज रहा, बोला, क्यों चुप हो,  
भले लोग भी बुरे हुए जगमें लोलुप हो ।  
दग पर पट्टी बैधी लोभकी फिर क्यों सूझे ?  
ज्ञान-दृष्टिसे हीन मनुज क्यों अनादित बूझे ।  
तुम रमे ! सीख मुन्नको न दो, क्या मैं शिष्ट हूँ चुप रहो  
मैं दान दुखी हो क्यों रहूँ तुम जो चाहो सो कहो ॥२४॥  
जाति पाँति यदि जाय रसातल चल जाने दो,  
धर्म-जाल यदि जले आगमें जल जाने दो ।  
छोड़ो शील सनेह यत्नसे रुपये जोड़ो,  
मोड़ो जगसे वदन बन्धुसे नाता तोड़ो,  
सुख, सुगति सुयश संसारमें सभी सम्पदा साथ है ।  
वे उभय लोकसे भ्रष्ट हैं जो जन छूड़े हाथ हैं ॥ २५ ॥  
मैं मानूँगा नहीं कहूँगा जो करता हूँ,  
कभी किसीसे नहीं कहीं भी मैं डरता हूँ ।  
दिनकी होवे रात, रातका दिन हो जावे  
अखिल लोक भी कभी किसीकी मुट्ठी आवे ।  
पर मुन्नको अपनी बातमें, लानेवाला कौन है ?  
या विना पापके द्रव्यको, पानेवाला कौन है ? ॥२६॥  
असाध्य है रोग रमा बिलोकके,  
चली हुई लोचन-धार रोकके ।  
जहाँ सुता थी वर भी वहीं गई  
तथापि चिन्ता मनकी नहीं गई ॥ २७ ॥

## विद्वज्जन खोज करें ।

[ ले० श्रीयुत बा० जुगलकिशोरजी मुखतार । ]

१ श्रीमद्भद्रकालकदेवनिर्मित ' तत्त्वार्थराज-  
वार्तिक ' में, भिन्नभिन्न स्थानों पर, संस्कृत और  
प्राकृतके जो ' उक्तं च ' पथ पाये जाते हैं  
उनमेंसे उह पथ ( गाथायें ) इस प्रकार हैं:—

“ पणवणिज्जा भाजा  
अणंतभागो दु अणभिलप्पार्ण ।  
पणवणिज्जाणं पुण  
अणंतभागो सुदणिवद्धो ॥ १ ॥

णिच्चिदरधादुसत्त य  
 तरुदस वियलिदिएसु छवेव ।  
 सुरणिरय तिरिय चउरो  
 चोदस मणुए सदसदस्सा ॥ २ ॥  
 णिद्धस्स णिद्धेण दुराहिएण  
 छुन्नखस्स लुक्खेण दुराहिएण ।  
 णिद्धस्स लुक्खेण उवेदि बंधो  
 जहणवज्जे विसमे समे वा ॥ ३ ॥  
 एगणिगोदसरोरे,  
 जीवा दव्वप्पमाणदेा दिदा ।  
 सिद्धेदि अणंतगुणा  
 सब्बेण वितांद मालेण ॥ ४ ॥  
 सच्चन्द्रिदीण सुक्कस्सगो दु  
 उक्कस्स संकिलेसेण ।  
 विवरीदेण जहण्णो  
 आयुगतिगवज्जसेसाणं ॥ ५ ॥  
 सुट्ठपयडीण विसोही  
 तिब्बो असुहाण संकिलेसेण ।  
 विवरीदेण जहण्णो  
 अणुभावो सब्ब पयडीणं ॥ ६ ॥

इनमेंसे पहली चार गाथायें वे हैं, जो श्री-  
 नेमिचंद्राचार्यविरचित 'गोम्मटसार' ग्रंथके  
 जीवकांडमें क्रमशः नं० ३३३, ८९, ६१४ और  
 १९५ पर दर्ज हैं। शेष दोनों गाथायें उक्त ग्रंथके  
 कर्मकांडमें क्रमशः नं० १३४ और १६३ पर  
 पाई जाती हैं। भट्टाकलंकदेव विक्रमकी ८  
 वीं और ९-वीं शताब्दीके ग्रंथकार हैं और  
 गोम्मटसारके कर्त्ता श्रीनेमिचंद्र सिद्धान्तचक्र-  
 वर्तीका समय विक्रमकी ११ वीं शताब्दि निश्चित  
 है \* । ऐसी हालतमें तत्त्वार्थराजवार्तिककी

\* नेमिचंद्र और चामुंडराय दोनों समकालीन ही  
 नहीं थे, बल्कि उनमें परस्पर गुरुशिष्य जैसा सम्बंध  
 था, इसमें किसीको विवाद नहीं है। नेमिचंद्रके प्रधान  
 शिष्य माधवचंद्र त्रैविद्यदेवने, और केशववर्णाने भी,  
 गोम्मटसारकी अपनी टीकामें यह सूचित किया है  
 कि गोम्मटसार ग्रंथ 'राचमल्ल' राजाके महामंत्री

उपर्युक्त, 'उत्तंच' गाथायें 'गोम्मटसार' ग्रंथसे  
 उद्धृत नहीं की गईं, यह कहनेमें कोई संकोच  
 नहीं हो सकता। राजवार्तिकके प्रकरणों तथा  
 कथनशैलीको देखते हुए, ये गाथायें 'क्षेपक'  
 भी मालूम नहीं होतीं। एक स्थान पर, ९ वें  
 अध्यायमें चौथे नम्बरकी गाथाको उद्धृत करके  
 और उसके नीचे 'इत्यागमप्रामाण्यादेकस्मि-  
 न्निगोदशरीरे जीवाः सिद्धान्तानामंतगुणाः' इत्यादि  
 वाक्य देकर भट्टाकलंकदेव उसे स्पष्ट रूपसे  
 किसी आगम ग्रंथका वचन भी सूचित करते  
 हैं। तब यह जरूर कहना होगा कि उक्त गाथायें  
 किसी दूसरे ही ग्रंथ अथवा ग्रंथोंपरसे उद्धृत की  
 गई हैं जिसका अथवा जिनका निर्माण भट्टाकलंक  
 देवके पहले हो चुका था। और बहुत संभव है कि  
 नेमिचंद्र सिद्धान्तचक्रवर्तीने भी वहींसे उनका  
 संग्रह किया हो। क्योंकि 'गोम्मटसार' एक  
 संग्रहग्रंथ है और उसका असली नाम भी  
 'गोम्मट-संग्रह-सुत्त' है। आश्चर्य नहीं, जो  
 इस ग्रंथकी अधिकांश गाथायें दूसरे प्राचीन  
 ग्रंथोंपरसे ही अविच्छन्न रूपसे संग्रह की गईं

'चामुंडराय' के प्रश्न पर रचा गया है। उक्त राचमल्ल-  
 का समय विक्रमकी ११ वीं शताब्दीका पूर्वार्ध है।  
 चामुंडरायने 'चामुंडराय-पुराण' नामका एक ग्रंथ  
 बनाया है जिसमें २४ तीर्थंकरोंका चरित्र है और  
 जिसके अंतमें उसके बननेका समय शक सं० ९००  
 ( वि० सं० १०३५ ) 'ईश्वर' संवत्सर दिया है,  
 ऐसा मिस्टर राइस साहबने अपनी 'इंस्क्रिपशन्स ऐट्  
 श्रवणबेलगोल' नामक पुस्तककी भूमिकामें उल्लेख  
 किया है। इसके सिवाय 'रत्न' नामके कविने अपने  
 'पुराण-तिलक' नामक ग्रंथमें, जो शक सं० ९१५  
 ( वि० सं० १०५० ) में बनकर समाप्त हुआ है,  
 अपने ऊपर चामुंडरायकी विशेष कृपा होनेका उल्लेख  
 किया है। इन सब प्रमाणों तथा इसी प्रकारके और भी  
 कुछ प्रमाणोंसे नेमिचंद्रका समय विक्रमकी ११ वीं  
 शताब्दि निश्चित किया जाता है।

हों। 'शिवार्य' अथवा 'शिवकोटि' नामके आचार्यका बनाया हुआ 'भगवती आराधनासार' नामका एक प्राचीन ग्रंथ है। इस ग्रंथके प्रारंभिक पाँच सात पत्रों पर ही दृष्टि डालनेसे मालूम हुआ कि इसकी भी अनेक गाथायें गोम्मटसारमें ज्योंकी त्यों संग्रहीत हैं। नमूनेके तौर पर यहाँ उनमेंसे दो गाथायें उद्धृतकी जाती हैं:—

सम्माइद्दी जीवो  
उवइंठ पवयणं तु सदहदि ।  
सदहदि असम्भाव  
अजाणमाणो गुरुणियोगा ॥ २७ ॥  
सुत्तादो तं सम्मं  
दरसिजजंतं जदा ण सदहदि ।  
सो चेव हवइ मिच्छा-  
इद्दी जीवो तदो पहुदो ॥ ३८ ॥

ये गाथायें भगवती आराधनासारमें क्रमशः नं० ३२ और ३३ पर दर्ज हैं। इस ग्रंथकी ४० और ४१ नम्बरकी गाथायें भी गोम्मटसारमें (नं० १८-१७ पर) पाई जाती हैं। संभव है कि आगे मीलान करने पर और भी बहुतसी गाथाओंका पता चले। गोम्मटसारके विषयमें एक बात यह भी कही जाती है कि उसकी रचना धवलादि ग्रंथोंके आधार पर हुई है। यदि यह सत्य है तो उन ग्रंथोंकी गाथाओंका भी इसमें संग्रह होना संभव है। तब गोम्मटसारकी ऐसी स्थिति होते हुए यह बात और भी दृढताके साथ कही जा सकती है कि उक्त छहों गाथायें 'नेमिचंद्र सिद्धान्तचक्रवर्तीकी स्वतंत्र रचना नहीं है। अवश्य ही वे किसी दूसरे आचार्यकी कृति हैं। परंतु दूसरे आचार्य कौन हैं और उनके कौनसे ग्रंथ अथवा ग्रंथोंसे उक्त गाथायें गोम्मटसारमें संग्रह तथा तत्त्वार्थ-राजवार्तिकमें 'उक्तं च' रूपसे उद्धृत की गई हैं, यह मालूम होनेकी बहुत बड़ी जरूरत है।

इसके मालूम होनेपर दूसरे अनेक प्रकारके उपयोगी अनुसंधानोंका जन्म हो सकेगा। इस लिए जैन विद्वानोंको इस विषयकी खोज करनी चाहिए।

२ उक्त तत्त्वार्थ-राजवार्तिकमें नीचे लिखे तीन पद्य भी 'उक्तं च' रूपसे पाये जाते हैं—

१-कारणमेव तदंत्यः सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणुः ।  
एकरसगंधवर्णं द्विस्पर्शः कार्यलिङ्गश्च ॥  
२-यदेतद्भविष्यं नाम प्राणाद्येते बहिश्चरा  
स तस्य हरते प्राणान् यो यस्य हरते धनम् ॥  
३-रागादीणमणुष्या अहिंसकत्तेति देसिदं समये ।  
तेसिं चेदुपपत्तीं हिंसेति जिणेहिं णिद्धि ॥

भट्टाकलंक देवके द्वारा 'उक्तं च' रूपसे उद्धृत किये हुए इन तीनों पद्योंमेंसे प्रत्येक पद्य कौनसे मूल ग्रंथका पद्य है? उसके कर्ता आचार्य महोदयका क्या नाम है? और वे किस सन-संवत्में हुए हैं? इन सब बातोंका अभी तक कुछ पता नहीं चला। श्रीअमृतचंद्र आचार्यके समयादिक निर्णय करनेमें सहायता प्राप्त करनेके लिए इन तीनों पद्योंका पता मालूम होनेकी जरूरत है। क्योंकि उक्त आचार्य महोदयके बनाये हुए 'तत्त्वार्थसार' और 'पुरुषार्थसिद्धचुपाय' नामके ग्रंथोंमें इन पद्योंसे मिलते जुलते नीचे लिखे पद्य पाये जाते हैं:—

१-सूक्ष्मो नित्यस्तथान्त्यश्च कार्यलिङ्गश्च कारणम् ।  
एक गंधरसवर्णकवर्णो द्विस्पर्शश्च सः ॥ ३-६० ॥  
—तत्त्वार्थसारः ।

२-अर्था नाम य एते  
प्राणा एते बहिश्चराः पुंसाम् ।  
हरति स तस्य प्राणान्  
यो यस्य जनो हरत्यर्थान् ॥ १०३ ॥

३-अप्रादुर्भावः खलु  
रागादीनां भवरथहिंसेति ।  
तेषामेवोत्पत्ति-  
हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः ॥ ४४ ॥

—पुरुषार्थसिद्धचुपायः

३ तत्त्वार्थराजवार्तिकके अन्तमें, एक ही स्थान पर, ३२ पद्य 'उक्तं च' रूपसे पाये जाते हैं। श्रीयुत पं० पन्नालालजी बाकलीवालने एक फुट नोटद्वारा उन सब पद्योंको क्षेपक बतलाया है और उनके क्षेपक होनेमें यह हेतु दिया है कि, ये सब पद्य अमृतचंद्राचार्यके बनाये हुए तत्त्वार्थसार ग्रन्थसंबंधी मोक्ष प्रकरणके पद्य हैं और इतिहासद्वारा तत्त्वार्थराजवार्तिकके कर्ता अकलंकदेवका समय अमृतचंद्रसे पहले निर्णीत हो चुका है। परंतु इतिहासद्वारा अभी तक ऐसा कोई निर्णय प्रगट नहीं हुआ। स्वयं बाकलीवालजीने हालमें अपने एक पत्रद्वारा इस नोटके लेखकको अमृतचंद्रका समय निर्णय करनेकी प्रेरणा की है। इस लिए हेतु असिद्ध है और उससे इन पद्योंका क्षेपक होना सिद्ध नहीं होता। श्वेताम्बरोंके यहाँ तत्त्वार्थसूत्र पर तीन खास टीकायें पाई जाती हैं; जिनमेंसे एक सुद उमास्वातिकी बनाई हुई कही जाती है, जिसका नाम 'तत्त्वार्थाधिगम भाष्य' है; दूसरीका पूर्वार्ध हरिभद्र (द्वितीय) का और उत्तरार्ध यशाभद्रका बनाया हुआ है, और तीसरी टीका सिद्धसेन गणिकी बतलाई जाती है। इन तीनों टीकाओंमें भी ये सब पद्य एक ही क्रमसे पाये जाते हैं। परन्तु सनातन जैनग्रंथमालाके प्रथम गुच्छकमें छप हुए 'तत्त्वार्थसार' को देखनेसे मालूम होता है कि उसमें ये सब पद्य बिल्कुल उसी एक क्रमसे नहीं हैं। तत्त्वार्थसारके मोक्ष प्रकरणमें इन पद्योंका सिलसिला २० वें नम्बरके पद्यसे प्रारंभ होकर नं० ५४ के पद्य पर समाप्त होता है। बीचमें नं० ३७ से ४८ तकके छह पद्य तत्त्वार्थसारमें अधिक हैं। एक पद्य 'द्रुधे बीजे' इत्यादि इस सिलसिलेमें ही नहीं है। वह तत्त्वार्थसारमें इस सिलसिलेसे बहुत पहले नं० ७ पर दिया है। इसी तरह पर 'ऊर्ध्व गौरव' वाला पद्य 'यथाधस्तिर्यग्' वाले पद्यसे पीछे पाया जाता है इसके सिवाय नीचे लिखे दो पद्य तत्त्वार्थसारमें नहीं मिलते:—

तन्वी मनौजा सुरभिः पुण्या परमभासुरा ।

प्राभारा नाम वसुधा लोकमूर्ध्वस्थिता ॥ १९ ॥

नृलोकउल्यविक्रमा सितच्छत्रनिभा शुभा ।

ऊर्ध्व तस्याः क्षिणेः सिद्धाः लोकानि समवस्थिता ॥ २० ॥

यद्यपि छपे हुए तत्त्वार्थराजवार्तिकके उक्त फुटनोटमें इन दोनों पद्योंको भी सबके साथ तत्त्वार्थसारके मोक्ष प्रकरणका बतलाया है, परंतु उक्त गुच्छकमें छपे हुए तत्त्वार्थसारमें हूँदने पर भी उनका पता नहीं मिला। संभव है कि ये दोनों पद्य तत्त्वार्थसारकी प्राचीन हस्तलिखित प्रतियोंमें मिलते हों और जिस प्रतिपरसे उक्त गुच्छकमें तत्त्वार्थसार छपा है उसमें न हों। अतः श्रीयुत पं० पन्नालालजी बाकलीवाल आदि जिन जिन विद्वानोंको ये दोनों पद्य तत्त्वार्थसारकी हस्तलिखित प्रतियोंमें मिले हों उनसे निवेदन है कि, वे कृपया मुझे उससे सूचित करें। साथ ही यह भी लिखें कि वह प्रति कौनसे भंडारकी है और किस सन्-संवत्की लिखी हुई है। और यदि ये दोनों पद्य तत्त्वार्थसारकी हस्तलिखित प्रतियोंमें भी नहीं हैं तो उस मूल ग्रंथ और उसके कर्ताकी खोज होनेकी जरूरत है, जिसके ये दोनों पद्य हैं। इस खोजसे बहुतसी बातों पर प्रकाश पड़ेगा।

४ 'पंचाध्यायी' नामके ग्रंथमें (पृ० १३३ पर) नीचे लिखी गाथा 'उक्तं च' रूपसे पाई जाती है:—

सेवेओ णिव्वेओ णिदणभरुशय उरससो भत्तो ।

वच्छल्लं अणुकंभा अहगुणा हुंति सम्भत्ते ॥

यह गाथा 'समयसार' ग्रंथकी जयसेना-चार्यकृत 'तात्पर्यवृत्ति' टीकामें भी, गाथा नं० २०१ के नीचे, 'उक्तं च' रूपसे पाई जाती है। और वसुनन्दिश्रावकाचारमें नं० ४९ पर इसका मूल रूपसे अवतरण किया गया है। परंतु अभी इसमें संदेह है कि यह गाथा श्रावकाचार (उपासकाध्ययन) के कर्ता वसुनन्दि आचार्यकी कृति है। क्यों कि इस श्रावकाचारकी एक पुरानी हस्तलिखित प्रतिमें, जो लगभग दोसौ तीनसौ वर्षकी लिखी हुई मालूम होती है और बम्बईमें श्रीमान् सेठ

माणिकचंद्र हीराचंद्रजी जे. पी. के पुस्तकालयमें मौजूद है, इस गाथाका पूर्वार्ध तो ज्योंका त्यों है परंतु उत्तरार्ध इस प्रकारसे दिया है:—

“ पूजा अवस्थजननं अरुहार्द्रिणं पयत्तेण ”

इसके सिवाय इस श्रावकाचारमें और भी अनेक गाथायें ऐसी पाई जाती हैं, जो दूसरे ग्रंथोंसे संग्रह की गई हैं। ऐसी हालतमें बिना किसी विशेष अनुसंधानके इस गाथाका मूलकर्ता वसुनन्दि आचार्यको नहीं माना जा सकता। यदि सचमुच ही यह गाथा उक्त वसुनन्दि आचार्यकी कृति हो तो ‘पंचाध्यायी’ का समय विक्रमकी १२ वीं शताब्दिके बादका समझा जायगा। पंचाध्यायीका समय निर्णय करने और उसके कर्ताका पता लगानेके लिए उक्त गाथाके मूलकर्ता और उनके उस ग्रंथकी खोज लगानेकी बहुत बड़ी जरूरत है। क्यों कि यह गाथा पंचाध्यायीमें श्लेषक नहीं हो सकती। ग्रंथकारने इसके बाद ‘उक्त गाथार्थ-सूत्रेषु’ इत्यादि वाक्य धिक्कर उसे भले प्रकार स्पष्ट कर दिया है।

५ पंचाध्यायीकी इन दो ‘उक्तं च’ गाथाओंका भी पता मालूम होनेकी जरूरत है कि वे कौनसे मूल ग्रंथकी हैं और उस ग्रंथके कर्ता कौनसे आचार्य हैं:—

णाम जिणा जिणणासा ठवणजिणा जिग्घिदपडिमाए ।  
दव्वजिणा जिणजीवा भायजिणा समवसरण तथा ॥  
आदहिंदं कादव्वं जवि सकह परहिदं च कादव्वं ।  
आदहिद परहिदादो आदहिदं सुद्ध कादव्वं ॥

आशा है कि विद्वज्जन उपर्युक्त सभी ‘उक्तं च’ पद्योंकी खोज लगानेका कष्ट उठायेंगे और अपनी खोजके नतीजेसे मुझे शीघ्र सूचित करनेकी कृपा करेंगे। मैं उनकी इस कृपाका अत्यंत आभारी हूँगा। साथ ही, बदलेमें उनके सामने अनेक प्रकारकी नई नई उपयोगी खोजें रखनेका प्रयत्न करूँगा। देवबन्द । ता. ३०-१०-१७

## नौकरोंसे पूजन कराना ।

[लेखक-श्रियुत बा० जुगलकिशोरजी मुख्तार ।]

जैनियोंमें दिन पर दिन यह बात बढ़ती जाती है कि मंदिरोंमें पूजाके लिए नौकर रखे जाते हैं—इवेतांबर मंदिरोंमें तो आम तौर पर अजैन ब्राह्मण इस कामके लिए नियुक्त किये जाते हैं—और उन्हींसे जिनेंद्र भगवान्का पूजन कराया जाता है। पुजारियोंके लिए अब समाचारपत्रोंमें खुले नोटिस भी आने लगे हैं। समाजमें नहीं आता कि, जो लोग मंदिर बनवाने, प्रतिष्ठा कराने, रथयात्रा निकालने और मंदिरोंमें अनेक प्रकारकी सजावट आदिके सामान इकट्ठा करनेमें हजारों और लाखों रुपये खर्च करते हैं वे फिर इतने भक्तिशून्य और अनुरागरहित क्यों हो जाते हैं जो अपने पूज्यकी उपासना अर्थात् अपने करनेका काम नौकरोंसे क्यों कराते हैं। क्या उनमें वस्तुतः अपने पूज्यके प्रति भक्तिका भाव ही नहीं होता और वे जो कुछ करते हैं वह सब लोक दिखावा, नुमायश, रुढिपालन और बाहरी वाहवाही लूटने तथा यश प्राप्तिके लिए ही होता है। कुछ भी हो, सच्चे जैनियोंके लिए यह एक बड़े ही कलंक और लज्जाकी बात है? लोकमें अपने अतिथियों तथा इष्टजनोंकी सेवाके लिए नौकर जरूर नियुक्त किये जाते हैं, जिसका अभिप्राय और उद्देश्य होता है—अतिथियों तथा इष्टजनोंको आराम और सुख पहुँचाना, उनकी प्रसन्नता प्राप्त करना और उन्हें अप्रसन्नचित्त न होने देना। परन्तु यहाँ मामला इससे बिलकुल ही विलक्षण है। जिनेंद्रदेवकी पूजासे जिनेंद्र भगवान्को कुछ सुख या आराम पहुँचाना अभीष्ट नहीं होता—वे स्वतः अनंतसुख-स्वरूप हैं—और न इससे भगवान्की प्रसन्नता य

अप्रसन्नताकाही कोई सम्बंध है। क्योंकि जि-  
नेंद्रदेव पूर्ण वीतरागी हैं—उनके आत्मामें राग  
या द्वेषका अंश भी विद्यमान नहीं है—वे किसीकी  
स्तुति, पूजा तथा भक्तिसे प्रसन्न नहीं होते और  
न किसीकी निन्दा, अवज्ञा या कटुशब्दों पर  
अप्रसन्नता लाते हैं। उन्हें किसीकी पूजाकी जरूरत  
नहीं और न निन्दासे कोई प्रयोजन है। जैसा  
कि स्वामी समंतभद्रके निम्नवाक्यसे भी प्रगट है—

न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे  
न निन्दया नाथ विवान्तैरे ।  
तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिनेः  
पुनातु चित्तं दुरिताजनेभ्यः ॥

—बृहत्स्वर्यमुस्तोत्र ।

ऐसी हालतमें कोई वजह मालूम नहीं होती  
कि जब हमारा स्वयं पूजन करनेके लिए  
उत्साह नहीं होता तब वह पूजन क्यों  
किरायेके आदमियोंद्वारा संपादन कराया जाता  
है। क्या इस विषयमें हमारे ऊपर किसीका  
दबाव और जबर है? अथवा हमें किसीके  
कुपित हो जानेकी कोई आशंका है? यदि ऐसा  
कुछ भी नहीं है तो फिर यह व्यर्थका स्वांग  
क्यों रचा जाता है? और यदि सचमुच ही  
पूजन न होनेसे जैनियोंको परमात्माके कुपित  
हो जानेका कोई भय लगा हुआ है और इस  
लिए जिस तिस प्रकारके पूजनद्वारा खुशामद  
करके हिन्दू, मुसलमान और ईसाइयोंकी तरह  
परमात्माको राजी और प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करते  
हैं तो समझना चाहिए कि वे वास्तवमें जैनी  
नहीं हैं; जैनियोंके बेषमें हिन्दू, मुसलमान या  
ईसाई हैं। उन्होंने परमात्माके स्वरूपको नहीं  
समझा और न वास्तवमें जैनधर्मके सिद्धान्तोंको  
ही पहचाना है। ऐसे लोगोंको इस नोटके लेखककी  
बनाई हुई 'जिनपूजाधिकारमीमांसा'\* नामक पुस्त-

\* यह पुस्तक कई वर्ष हुए, श्रीमान् सेठ नाथा-  
रंगजी गांधी, बम्बई ( डबरा लेन, मांडवी ) की ओरसे  
जैनहितैषीके उपहारमें निकल चुकी है और इस समय  
भी संभवतः उक्त सेठ साहबके पाससे विना मूल्य  
मिलती है ।

कमें 'पूजनसिद्धान्त' को पढ़ना और उसी अच्छी  
तरहसे समझना चाहिए। इसके सिवाय यदि इस  
प्रकारके ( किरायेके आदमियों द्वारा ) पूजनकी  
गरज पुण्य-संपादन करना कही जाय तो वह भी  
निरी मूल है और उससे भी जैनधर्मके सिद्धान्तोंकी  
अनभिज्ञता पाई जाती है। जैनसिद्धान्तोंकी दृष्टिसे  
प्रत्येक प्राणी अपने शुभाशुभ भावोंके अनुसार पुण्य और पापका संचय करता  
है। ऐसा अंधेर नहीं है कि शुभ भाव तो कोई  
करे और उसके फलस्वरूप पुण्यका सम्बन्ध  
किसी दूसरे ही व्यक्तिके साथ हो जाय। पूजनमें  
परमात्माके पुण्य गुणोंके स्मरणसे आत्मामें जो  
पवित्रता आती और पापोंसे जो कुछ रक्षा होती  
है उसका लाभ उसी मनुष्यको हो सकता है  
जो पूजन द्वारा परमात्माके पुण्य गुणोंका स्मरण  
करता है। इसी बातको स्वामी समंतभद्रने  
अपने उपर्युक्त पद्यके उत्तरार्धमें भले प्रकारसे  
सूचित किया है। इससे स्पष्ट है कि सेवकद्वारा  
किये हुए पूजनका फल कभी उसके स्वामीको  
प्राप्त नहीं हो सकता; क्योंकि वह उस पूजनमें  
परमात्माके पुण्यगुणोंका स्मरणकर्ता नहीं है।  
ऐसी हालतमें नौकरोंसे पूजन कराना बिल्कुल  
व्यर्थ है और वह अपने पूज्यके प्रति एक प्रका-  
रसे अनादरका भाव भी प्रगट करता है। तब  
क्या होना चाहिए? जैनियोंको स्वयं  
पूजन करना और पूजनके स्वरूपको सम-  
झना चाहिए। अपने पूज्यके प्रति आदर-  
सत्काररूप प्रवर्तनेका नाम पूजन है। उसके  
लिए अधिक आडम्बरकी जरूरत नहीं है। वह  
पूज्यके गुणोंमें अनुरागपूर्वक बहुत सीधासादा  
और प्राकृतिक होना चाहिए। पूजनमें जितना  
ही अधिक बनावट, दिखावट और आडम्बरसे  
काम लिया जायगा, उतना ही अधिक वह  
पूजनके सिद्धान्तसे गिर जायगा। जबसे  
जैनियोंमें बहुआडम्बरयुक्त पूजन प्रचलित

हुआ है तभीसे उन्हें पुजारियोंके नौकर रखनेकी जरूर पड़ी है । अन्यथा जिनेंद्र भगवान्की सच्ची और प्राकृतिक पूजाके लिए किरायेके आदमियोंकी कुछ भी जरूरत नहीं है । जैनियोंके प्राचीन साहित्यकी जहाँतक खोज की जाती है, उससे भी यही मालूम होता है, कि पुराने जमानेमें जैनियोंमें वर्तमान जैसा बहु-आडम्बरयुक्त पूजन प्रचलित नहीं था । उस समय अर्हतभक्ति, सिद्धभक्ति, आचार्यभक्ति और प्रवचनभक्ति आदि अनेक प्रकारकी भक्तियों द्वारा, जिनके संस्कृत और प्राकृतके कुछ प्राचीन पाठ अब भी पाये जाते हैं, पूज्यकी पूजा और उपासना की जाती थी । श्रावक लोग मंदिरोंमें जाकर प्रायः जिनेंद्रप्रतिमाके सम्मुख, खड़े होकर अथवा बैठकर, अनेक प्रकारके समझमें आने योग्य स्तोत्र पढ़ते तथा भक्तिपाठोंका उच्चारण करते थे और परमात्माके गुणोंका स्मरण करते हुए उनमें तल्लीन हो जाते थे । कभी कभी वे ध्यानमुद्रासे बैठकर परमात्माकी मूर्तिको अपने हृदयमंदिरमें विराजमान करके निःशब्द रूपसे गुणोंका चिन्तन करते हुए परमात्माकी उपासना किया करते थे । प्रायः यही सब उनका द्रव्य-पूजन था और यही भावपूजन । उस समयके जैनाचार्य वचन और शरीरको अन्य व्यापारोंसे हटाकर उन्हें अपने पूज्यके प्रति, स्तुतिपाठ करने और अंजुलि जोड़ने आदि रूपसे, एकाग्र करनेको द्रव्यपूजा और उसी प्रकारसे मनके एकाग्र करनेको भावपूजा मानते थे, जैसा कि श्रीअमितगति आचार्यके निम्नलिखित वाक्यसे प्रगट है:—

वचोविग्रहसंकोचो द्रव्यपूजा निगद्यते ।

तत्र मानससंकोचो भावपूजा पुरातनैः ॥१२-१२॥

—उपासकाचार ।

जबसे हिन्दुओंके प्राबल्यद्वारा जैनियों पर हिन्दुधर्मका प्रभाव पड़ा है और उन्होंने हिन्दु-

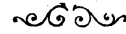
ओंकी देखादेखी उनकी बहुतसी ऐसी बातोंको अपनेमें स्थान दिया है, जिनका जैनसिद्धान्तोंसे प्रायः कुछ भी सम्बंध नहीं है तभीसे जैनसमाजमें बहुआडम्बरयुक्त पूजनका प्रवेश प्रारंभ हुआ है और उसने बढ़ते बढ़ते वर्तमानका रूप धारण किया है कि जिसमें बिना पुजारियोंके नौकर रखे नहीं बीतती । आजकल इस पूजनमें मुक्तिको प्राप्त हुए जिनेंद्र भगवान्का आवाहन और विसर्जन भी किया जाता है । उन्हें कुछ मंत्र पढ़कर बुलाया, बिठलाया, ठहराया और फिर नैवेद्यादिक अर्पण करनेके बाद रुखसत किया जाता है—कहा जाता है कि महाराज, अब आप अपने स्थान पर तशरीफ़ ले जाइए और हमारा अपराध क्षमा कीजिए; क्यों कि हमलोग ठीक तौरसे आवाहन, पूजन और विसर्जन करना नहीं जानते । जरा सोचनेकी बात है कि, जैनधर्मसे इन सब क्रियाओंका क्या सम्बंध है ? जैनसिद्धान्तके अनुसार मुक्त तीर्थकर अथवा जिनेंद्र भगवान् किसीके बुलानेसे नहीं आते; न किसीके कहनेसे कहीं बैठते, ठहरते या नैवेद्यादिक ग्रहण करते हैं; और न किसीके रुखसती ( विसर्जनात्मक ) शब्द उच्चारण करने पर वापिस ही चले जाते हैं । ऐसी हालतमें जैनधर्मसे इन आवाहन और विसर्जनसम्बंधी क्रियाओंका कोई मेल नहीं है । वास्तवमें ये सब क्रियायें हिन्दुधर्मकी क्रियायें हैं । हिन्दुओंके यहाँ वेदोंतकमें देवताओंका आवाहन और विसर्जन पाया जाता है । वे लोग ऐसा मानते हैं कि देवता लोग बुलानेसे आते, बैठते, ठहरते और अपना यज्ञभाग ग्रहण करके, रुखसत करने पर, वापिस चले जाते हैं । इससे हिन्दुओंके यहाँ आवाहन और विसर्जनका यह सब कथन ठीक बन जाता है । परंतु जैनियोंकी ऐसी मान्यता नहीं है । इसी लिए जैनधर्मसे इनका मेल नहीं मिलता और ये सब

क्रियायें बिलकुल बेजोड़ मालूम होती हैं। इसी प्रकारकी, पूजन सम्बंधमें और भी बहुतसी क्रियायें हैं, जो हिन्दुओंसे उधार लेकर रखी गई अथवा उनके संस्कारोंसे संस्कारित होकर पछिसे बना ली गई हैं और जिन सबका जैनसिद्धान्तोंसे प्रायः कुछ भी मेल नहीं है। यहाँ इस छोटेसे नोटमें उन सब पर विचार नहीं किया जा सकता और न इस समय उनके विचारका अवसर ही प्राप्त है। अवसर मिलने पर उन पर फिर कभी प्रकाश डाला जायगा। परन्तु इतना जरूर कहना होगा कि वर्तमानका पूजन इन्हीं सब क्रियाओंके कारण बिलकुल अप्राकृतिक और आडम्बरयुक्त बन गया है और उससे जैनियोंकी आत्मीय प्रगति, एक प्रकारसे, रुक गई है। यदि सचमुच ही हमारे जैनी भाई अपने पूज्य परमात्माकी पूजा, भक्ति और उपासना करना चाहते हैं तो उन्हें सब आडम्बरोंको छोड़कर पूजनकी अपनी वही पुरानी, प्राकृतिक और सीधीसादी पद्धति जारी करनी चाहिए; जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है। ऐसा करने पर पुजारियोंके नौकर रखनेकी भी फिर कुछ जरूरत नहीं रहेगी और आत्मोन्नतिसम्बन्धी वह सब लाभ अपनेको प्राप्त होने लगेगा, जिसको लक्ष्य करके ही मूर्तिपूजाका विधान किया गया है और जिसका परिचय पाठकोंको, 'जिनपूजाधिकारमीमांसा'के 'पूजनसिद्धान्त' प्रकरणको पढ़नेसे मले प्रकार मिल सकता है। विपरीत इसके यदि जैनी लोग अपनी वर्तमान पूजनपद्धतिको न बदलनेके कारण नौकरोंसे पूजन कराना जारी रखेंगे तो इसमें संदेह नहीं कि वह समय भी शीघ्र निकट आ जायगा जब उन्हें दर्शन, सामायिक, स्वाध्याय, तप, जप, शील, संयम, व्रत, नियम और उपवासादिक सभी धार्मिक कामोंके लिए नौकर रखने या उन्हें सर्वथा छोड़ देनेकी

जरूरत पढ़ने लगेगी। और तब उनका धर्मसे बिलकुल ही पतन हो जायगा। इस लिए जैनियोंको शीघ्र ही सावधान होकर अपनी वर्तमान पूजनपद्धतिमें आवश्यक सुधार करके उसे सिद्धान्तसम्मत बना लेना चाहिए। और नौकरोंके द्वारा पूजनकी प्रथाको एकदम उठा देना चाहिए। आशा है कि, समाजके नेता और विद्वान् लोग इस विषयकी ओर खास तौरसे ध्यान देंगे।

देवबन्द । ता० २९-१०-१७

## जैनसमाजके क्षयरोग पर एक दृष्टि ।



[ लेखक, श्रीयुत बाबू रतनलाल जैन,  
बी. ए., एल. एल. बी. ]

( शेषांश । )

९ बहुतसे गोत्रोंको टालकर विवाह सम्बन्ध करना। जैनसमाजमें जितनी जातियाँ हैं, उन सभीमें इस बातका विचार किया जाता है कि कन्या वरसे भिन्न गोत्रकी हो। पर इस गोत्रभिन्नताका परिमाण सबमें एकसा नहीं है किसीमें कम है और किसीमें अधिक है। अग्रवाल आदि जातियोंमें केवल यह देखा जाता है कि कन्या वरके गोत्रसे किसी भिन्न गोत्रकी हो। कुछ जातियाँ ऐसी हैं जिनमें यह नियम है कि कन्या वरके गोत्रकी और वरके मामाके गोत्रकी न होनी चाहिए, इनसे अतिरिक्त चाहे जिस गोत्रकी हो। कई जातियोंमें यह देखा जाता है कि कन्या वरके गोत्रकी, वरके मामाके गोत्रकी, वरके पिताके मामाके गोत्रकी और वरकी माताके मामाके गोत्रकी न हो, इनके सिवाय और चाहे जिस गोत्रकी हो। किसी किसी जातिमें



वरके ४ की जगह ६ गोत्र टाले जाते हैं और उनके अतिरिक्त किसी गोत्रकी कन्यासे सम्बन्ध किया जाता है। कोई कोई जातिवालोंने इनका भी नम्बर ले लिया है। वे यह देखते हैं कि वर पक्षके उपर्युक्त चार गोत्र कन्या पक्षके भी इन्ही चार गोत्रोंमेंसे न होना चाहिए। पर इस विचारकी चरमसीमा यहीं न समझनी चाहिए, कई जातियोंमें दोनों पक्षके आठ आठ, इस तरह १६ गोत्र बचानेका भी रवाज है !

अपनी ही जातिके अतिरिक्त अन्य किसी जातिमें विवाह न करनेके नियमसे विवाहका क्षेत्र पहलेहीसे सीमाबद्ध हो रहा था, उस पर इन गोत्रोंके विचारने उसे और भी अधिक संकुचित कर दिया है। इससे कन्याओंके लिए सुयोग्य वरोंका मिलना और सुयोग्य वरोंके लिए अच्छी कन्याओंका मिलना बहुत ही कठिन हो गया है। विवाहमें इस तरहकी रुकावटोंके कारण अनमेल विवाह बहुत होते हैं, विधवाओंकी संख्या बढ़ती है और अविवाहित पुरुष भी बढ़ जाते हैं। इन सब बातोंका फल यह होता है कि ऐसी जातियोंको क्षयरोग लग जाता है और धीरेधीरे उनका इस संसारसे कूच हो जाता है।

अब समय आ गया है कि हम लोग अपनी इन रीतियों पर विचार करें। हम अब नन्हें नादान नहीं हैं, अपने हानिलाभको समझने लगे हैं। इतने गोत्रोंके टालनेकी न तो शास्त्रमें ही कोई आज्ञा है और न शरीर शास्त्रकी दृष्टिसे ही इसमें कोई लाभ है। पुराण और कथा-ग्रन्थोंके देखनेसे मालूम होता है कि पहले समयमें मामाकी लड़कीके साथ सम्बन्ध करना तो एक बहुत ही मामूली बात थी। मामाकी लड़की पर तो भानजेका खास हक होता था। कर्नाटककी कई जातियोंमें अब भी यह रीति प्रचलित है। हरिवंशपुराणमें लिखा है कि राजा यशुके शूर और सुवीर नामके दो पुत्र थे। शूरके

अन्धकवृष्टि आदि और सुवीरके भोजकवृष्टि आदि पुत्र हुए। फिर अन्धकवृष्टिके पुत्र समुद्र-विजय, वसुदेव आदि और भोजक वृष्टिके उग्रसेन महासेन आदि हुए। इस हिसाबसे उग्रसेन और समुद्रविजय बहुत ही निकटके भाई थे, फिर भी एककी पुत्री राजीमतीका दूसरेके पुत्र अरिष्टनेमिके साथ विवाहसम्बन्ध होना स्थिर हो गया था ! अब कहिए कहाँ तो उस समयके आदर्श पुरुषोंमें इतने निकटके सम्बन्ध करनेकी पद्धति और कहाँ हमारी पंचमकालके लोगोंकी सोलह सोलह गोत्रोंके बचानेकी चाल ! हम नहीं कहते हैं कि आप लोग इतने निकटका सम्बन्ध करने लगे, हम केवल यह चाहते हैं कि इन कथाओं पर विचार करके अपनी गोत्र टालनेकी जो अमर्यादित सख्ती है उसको अपने सुभीतेके अनुसार ढीली कर दो।

वैद्यक ग्रन्थोंसे तथा शरीरशास्त्रके नये नये अनुसन्धानोंसे यह निश्चय हुआ है कि कन्या और वर एक ही वीर्य या रुधिरसे उत्पन्न हुए न होना चाहिए। यदि पति-पत्नी एक ही रुधिरवीर्यजात हों तो उनके सन्तान नहीं होती और यदि होती है तो बहुत कमजोर होती है। इस लिए एक ही कुटुम्बमें उत्पन्न हुए लड़के लड़कियोंका परस्पर विवाहसम्बन्ध न होना चाहिए और इसी तरह मामा, फुफा और मौसाकी लड़कीसे भी विवाह वर्जित है, परन्तु पाँच सात पीढ़ियोंके बाद वीर्य और रुधिर इतना बदल जाता है कि फिर उसके संयोगमें सन्तानके न होनेकी या दुर्बल होनेकी संभावना नहीं रहती। इन सब बातों पर विचार करके अधिक गोत्र टालनेकी प्रथाको बदल डालना चाहिए। कमसे कम दो दो, चार चार, आठ आठ और सोलह सोलह गोत्रोंके टालनेकी लोकोत्तर मूर्खताको तो अवश्य छोड़ देना चाहिए। इससे न तो किसी धार्मिक आज्ञाका उल्लंघन होगा और न कोई सामाजिक हानि होगी।

१० एक ही जातिके भीतर ऊँचता मानना । जैनसमाजमें जो बहुतसे अनोखे विचार फैले हुए हैं, यह विचार भी उनमेंसे एक है । इसको समझनेके लिए एक उदाहरण लीजिए । मोहनका एक कुटुंब है जो बहुत बड़ा है और जिसमें अनेक स्त्री पुरुष और बच्चे हैं । उसमें कितने ही लोग ऐसे हैं जो एक दूसरेसे आठ दस पीढ़ीकी दूरी पर हैं, अर्थात् आठदस पीढ़ियोंके पहले उनका एक पुरुष था । इतना ही बड़ा एक कुटुम्ब रामलालका उसी स्थानमें या अन्य किसी नगर ग्राममें है । यदि कभी इन दोनों कुटुम्बोंके बीच सम्बन्ध हुआ और मोहनके कुटुम्बका कोई लड़का रामलालके कुटुम्बकी किसी लड़कीके साथ ब्याहा गया, तो बस उसी समयसे रामलालका कुटुम्ब नीचा हो गया । इसका फल यह होगा कि मोहनके कुटुम्बके पुरुष रामलालके कुटुम्बकी कन्याओंके साथ तो विवाह कर लेंगे; परन्तु रामलालके कुटुम्बके पुरुष मोहनके कुटुम्बकी कन्याओंके साथ विवाह नहीं कर सकेंगे । अर्थात् रामलालके कुटुम्बकी लड़कियाँ मोहनके कुटुम्बमें तो जा सकती हैं; परन्तु मोहनके कुटुम्बकी कोई लड़की रामलालके कुटुम्बमें नहीं जा सकती । यह रवाज उस हानिकारक और कठोर विचारसे उत्पन्न हुआ है जिसमें स्त्रीजाति पुरुषजातिकी अपेक्षा तुच्छ और नीच गिनी जाती है । जब कन्या वरसे नीची समझी गई, तब कन्याका कुटुम्ब वरके कुटुम्बसे नीचा हो गया और यह ऊँच नीच माननेका रवाज पड़ गया । इस रवाजसे विवाहका संकुचित क्षेत्र और भी अधिक संकुचित हो गया है । कहावत है कि जब चींठीके मरनेके दिन आते हैं तो उसके पर निकल आते हैं । यह कहावत जैनसमाजके ऊपर

अच्छी तरह लागू होती है । अनेक जातियोंका होना, अनेक गोत्रोंका टालना और एकही जातिके भीतर उपर्युक्त ऊँचा-नीचापन मानना ये ही सब पंखे हैं जो इस समाजके मरनेकी सूचना देते हैं ।

जिन जातियोंमें उपर्युक्त ऊँचता नीचता माननेका रवाज है, उन्हें चाहिए कि इसको मिटा दें । यह बिलकुल अस्वाभाविक है । कन्याके देनेसे कोई कुटुम्ब नीचा नहीं हो जाता और लेनेसे कोई ऊँचा नहीं हो जाता । मनुष्य अच्छे बुरे आचरणोंसे ही बड़ा छोटा बनता है ।

११ जलवायुका प्रभाव । यह बात स्वास्थ्यसम्बंधी प्रकरणमें लिखनेसे रह गई है कि जन संख्या पर जलवायुका भी बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है । कुछ दिन पहले मैं सहारनपुर जिलेके कस्बे 'नानोता' में गया, तो मुझे वहाँ इस बातका खूब अनुभव हुआ । इस जिलेकी अधिकांश पृथिवीमें नमी बहुत है । जमीन खोदने पर पानी बहुत ही पास निकल आता है । इसके कारण वायुमें भाप मिली रहती है, खुश्की नहीं होती, पानी बाढ़ी करता है और भारी होता है । इससे यहाँके लोगोंका स्वास्थ्य खराब रहता है और मौतें अधिक होती हैं । सहारनपुर जिलेकी जैनसंख्याके घटनेका यह भी एक कारण है । व्यायामके अधिक प्रचारसे और आरोग्यताके नियमों पर चलनेसे इस प्रभावसे बचा जा सकता है ।

१२ जैनोंका आर्यसमाजी हो जाना या अन्य हिन्दुओंमें मिल जाना । जैनसमाजमें बड़ी अज्ञानता फैली हुई है । विद्वानोंकी इस समाजमें बहुत ही अधिक कमी है । ऐसे सैकड़ों स्थान हैं जहाँके जैनी यह नहीं जानते कि हम पन्द्रिजमें जाकर किसके

पूजते हैं, नमोकार मंत्र क्या है, सात तत्त्व कौन कौन हैं, आदि । ऐसे स्थानोंका कोई जैनी जब आर्यसमाजी भाइयोंकी संगतिमें आता है, उनकी सभाओंमें उपदेश सुनता है, उनके धार्मिक काम देखता है तो धीरे धीरे उसका झुकाव उसी ओर होने लगता है और कुछ ही समयमें वह पक्का आर्यसमाजी हो जाता है । बहुतसे जैनी युवक—जिनके चित्तमें समाजसेवाका तीव्र उत्साह होता है—जैनसमाजमें कोई ऐसा कार्य-क्षेत्र न पाकर जिसमें कि वे उत्साहपूर्वक काम कर सकें, आर्यसमाजोंमें काम करने लगते हैं, उनकी सहायता करते हैं, और समय बीतने पर उनके प्रभावसे प्रभावान्वित होकर आर्यसमाजी हो जाते हैं ।

बहुतसे स्थान ऐसे हैं जहाँ जैनी नाममात्रके जैनी हैं—जैनधर्मसे शून्य हैं । न उनमें कोई विद्वान् है जो जैनधर्मका उपदेश दिया करे और न वहाँ उपदेशक लोग ही पहुँचते हैं । ऐसे स्थानोंके लोग जैनी इसलिए कहलाते हैं कि उनमें जैनधर्मके कुछ चिह्न रहते हैं—जैसे प्रतिदिन मन्दिरमें जाकर दर्शन करना, रात्रिभोजन नहीं करना, आदि । इस तरहके लोगोंमेंसे जब कोई प्रमादसे अथवा अन्य किसी कारणसे देवदर्शन छोड़ देता है और रात्रिभोजन आदि करने लगता है, तब उसमें जैनत्वका कोई चिह्न नहीं रह जाता और वह अपनी जातिके साधारण हिन्दुओंकी तरह हो जाता है और यदि उस जातिके हिन्दुओं और जैनीयोंमें परस्पर रोटी-बेटीका व्यवहार हुआ जैसा कि अथवालोंमें है, तो उक्त जैनी और हिन्दुओंमें कोई अन्तर नहीं रहता । ऐसी दशामें वह पुरुष और उसकी सन्तान कुछ समयतक तो जैनधर्मावलम्बी कहलाती है, परन्तु फिर एकाघ पीढ़ी बीतने पर उसे यह भी याद नहीं रहता कि हमारे यहाँ कभी जैनधर्म भी पाला जाता था ।

इस तरह बहुतसे जैन कुटुम्ब हिन्दूसमाजमें मिल गये और मिलते जाते हैं ।

इस कारणसे भी जैनसमाजकी जनसंख्यामें हानि हुई है । परन्तु यह हानि उतनी अधिक नहीं हुई है जितनी कि ऊपर लिखे अन्य दस कारणोंसे हुई है । फिर भी यह हानि हानि ही है और इससे बचनेका उपाय करना चाहिए ।

इसके लिए सबसे अच्छा उपाय विद्वान् उपदेशकोंका प्रत्येक छोटे बड़े स्थानमें घूमना और उपदेश देना है । उन्हें प्रत्येक मनुष्यको जैनधर्मका रहस्य और उसका महत्त्व समझाना चाहिए, और जैनधर्मके ग्रन्थोंको निरन्तर पढ़नेकी प्रेरणा करनी चाहिए । इससे वे समझ जावेंगे कि भगवान् महावीरका उपदेश क्या है, उनके उपदेशमें महत्त्वकी बातें क्या क्या हैं और उनके धर्ममें दूसरे धर्मोंसे क्या क्या विशेषतायें हैं ।

जैनविद्वानोंके भ्रमणसे केवल यही लाभ नहीं होगा कि जैनी जैनधर्मसे च्युत होनेसे बच जावेंगे, बल्कि बहुतसे अजैन भी जैन बन जावेंगे । भगवान् महावीरका उपदेश इतना उत्तम है कि जिन हृदयक्षेत्रों पर यह पड़ेगा वहीं जैनधर्मके अंकुर उत्पन्न होने लगेंगे ।

उपदेशक जितने ही विद्वान्, निःस्पृह, निरभिमानी, शान्त और सच्चरित्र होंगे, उतना ही अधिक उनका लोगों पर प्रभाव पड़ेगा । क्योंकि जनतापर उपदेशकी अपेक्षा चरित्रका प्रभाव अधिक पड़ता है ।

जैनधर्मको संसारका सर्वमान्य धर्म बनानेके लिए ऐसे कर्मवीरोंकी आवश्यकता है, जिनके मुख पर जैनधर्मकी झलक हो, जिनके प्रत्येक कार्य पर जैनधर्मकी छाप हो और जिनका हृदय जैनधर्मके उदार सिद्धान्तोंका क्रीडास्थल हो । जिनमें जैनधर्मके प्रचार करनेका दुर्दमनीय उत्साह हो, जिनका अपनी कषायों पर और इन्द्रियों पर अधिकार हो, जो द्रव्यक्षेत्र-

काल-भावके अनुसार काम करनेवाले हों, किन्तु अपने मूल सिद्धान्तसे जरा भी न हटनेवाले हों, अहिंसा धर्म जिनकी जिह्वा पर ही न हो किन्तु उनके हर एक कार्यसे टपकता हो, जिनके दयासमुद्रमें किसी एक खास जाति, देश या धर्मके ही मनुष्य नहीं, किन्तु समस्त संसारके केवल मनुष्य ही नहीं वरन् जीवमात्र गोता लगा सकते हों, उन्हीं कर्मवीरोंकी हमें जरूरत है।

जिस समाजमें और धर्ममें ऐसे कर्मवीर होते हैं, वह समाज और वह धर्म दिन पर दिन उन्नति करता है; कार्य करनेवाले और सहायता देनेवाले उसे स्वयं ही मिल जाते हैं, उसमें आकर्षण शक्ति बढ़ जाती है और उसके समीप बलाढ्यसे बलाढ्य आत्मयें खिंची हुई चली आती हैं।

जब जब किसी धर्मने उन्नति की है, तब तब उसमें कर्मवीर मनुष्योंने जन्म लिया है। दो हजार वर्ष पहले बौद्ध धर्म सारे भारतमें अग्निकी तरह फैल गया था। इसका कारण क्या था? यही कि उसमें ऐसे सैकड़ों स्वार्थत्यागी और कर्मवीर भिक्षुक हो गये थे जिनका काम था जनताको लाभ पहुँचना, दुखियोंका दुःख दूर करना, रोगियोंकी सेवा करना और उनकी दवा-दारू करना, बुरा कहनेवालों और मारनेवालोंपर भी प्यार करना, और ब्राह्मण हो चाहे मेहतर, सबके साथ एकसा वृत्ति करना। इत्यादि। ईसाई धर्म भी ऐसे ही कर्मवीरोंके द्वारा फैला। उनमें सैकड़ों वीर ऐसे हो गये, जो अपने सिद्धान्तोंके ऊपर जीवित जला दिये गये, पर उन्होंने कायरता धारण नहीं की। फल यह हुआ कि सारा यूरोप ईसाईधर्मका अनुयायी हो गया। हालके थियासोफी सम्प्रदायकी ओर ही देखिए। इसके कर्मवीर कितना काम कर रहे हैं। यद्यपि इनकी संख्या इस देशमें बहुत थोड़ी है, तो भी इनके द्वारा अनेक हाई-स्कूल और कालेज आदि चल रहे हैं, देश-

सेवाके बीसों काम हो रहे हैं और इस समय तो इसके नेता भारतको स्वराज्य प्राप्त करानेके बड़ेसे बड़े पुण्य कार्यके अनुष्ठानमें लगे हुए हैं। ऐसे कार्योंका जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। यही कारण है जो इस सम्प्रदायकी उन्नति होती जाती है और सैकड़ों विद्वान् इस सम्प्रदायके अनुयायी होते जाते हैं।

जैनसमाजकी उन्नतिके लिए भी ऐसे ही कर्मवीरोंकी आवश्यकता है। जैनाचार्योंने चार प्रकारका दान करना गृहस्थोंका नित्य कर्म बतलाया है—भोजनदान, ज्ञानदान, औषधदान और अभयदान। संसारमें जितने परोपकारके कार्य हैं, वे सभी इनमें गर्भित हो जाते हैं। कर्मवीर इन्हीं कामोंको करेंगे। वे भूखोंको भोजन देंगे, अकाल पीड़ितोंकी सहायता करेंगे, अनाथोंका पालनपोषण करेंगे, विद्यालय, पुस्तकालय, स्कूल, कालेज खोलेंगे, छात्रवृत्तियाँ देकर ज्ञानलाभ करनेका मार्ग सुगम कर देंगे, औषधालय खोलेंगे, दवाइयों मुफ्त बाँटेंगे, रोगियोंकी परिचर्या करेंगे और उनका इलाज करायेंगे, दुखियोंके दुःख दूर करेंगे, कोई किसीको सता रहा हो तो उसकी रक्षा करेंगे, किसी देशकी प्रजा पर कोई आपत्ति आई होगी तो उसे हटावेंगे, और उसके स्वत्वोंकी रक्षाके लिए घोर आन्दोलन करेंगे।

जैनसमाजमें जब ऐसे कर्मवीर हो जायेंगे और वे अपना कार्य शुरू कर देंगे, तब उन्हें सहायता करनेवालोंकी कमी न रहेगी। जो बी. ए. एम्. ए. आदि समाजकी भलाईके लिए कोई काम नहीं करते हैं उन पर भी इनका प्रभाव पड़ेगा और वे बड़ी प्रसन्नतासे सेवा-कार्योंमें लग जायेंगे। केवल इतना ही नहीं, सैकड़ों उत्साही अजैन सज्जन भी इनके आत्म-बलसे आकर्षित होकर काम करने लगेंगे। इस

तरह यह जैनसमाज स्वयमेव ही उन्नति करने लगेगा और इसकी संख्यामें वृद्धि होने लगेगी ।

जैन जनसंख्याकी घट्टीके कारण बतलाये जा चुके और उन सबके दूर करनेके उपाय भी साथ ही साथ बतला दिये गये; अब केवल एक महान् उपायकी ओर पाठकोंका ध्यान आकर्षित किया जाता है जो सब कारणोंको दूर करनेका एक और अद्वितीय उपाय है, और वह है अज्ञानताको समाजसे हटाना । अज्ञानता ही सारें पापोंकी, सारे अवनतिके कारणोंकी और सारे दुःखोंकी जड़ है । इसीके कारण हमारे आन्दोलन सफल नहीं होते, कुरीतियाँ दूर नहीं होतीं, स्वास्थ्यरक्षा नहीं होती और हमारी संख्या बराबर घटती जाती है । अतएव हमें इसके दूर करनेके लिए हर तरहसे उद्योग करना चाहिए । पुरुषों और स्त्रियों दोनोंमें शिक्षाके और ज्ञानके प्रचारकी आवश्यकता है । यह प्रचार किन किन उपायोंसे होगा, यह बतलानेके लिए इस लेखमें उपयुक्त स्थान नहीं है और हम समझते हैं कि अब इसके बतलानेकी आवश्यकता भी नहीं रही है । विद्यालय, छात्रालय, पुस्तकालय, आदि खोलने, उपदेशादि देनेके उपायोंको सभी जानने लगे हैं ।

## आदिपुराणका अवलोकन ।



( लेखक, श्रीयुत बाबू सूरजमानजी वकील । )

( ४ )

### वेश-भूषा ।

इस समय लोगोंको जितनी पृथिवी मालूम है वह जम्बूद्वीपका एक बहुत ही छोटा टुकड़ा है, यहाँतक कि कोई कोई तो इसे भरतखण्डकेही अन्तर्गत मानते हैं; परन्तु इस छोटेसे खण्डमें

भी सैकड़ों और हजारों प्रकारके वेष दिखलाई दे रहे हैं और आभूषणोंके विषयमें तो यहाँ तक विभिन्नता हो रही है कि किसी किसी देशमें तो स्त्रियाँ भी आभूषण नहीं पहनती हैं और किसी किसी देशमें पुरुष भी इनका पहनना जरूरी समझते हैं । दूर क्यों जाइए, अपने इस हिन्दुस्तानमें ही पंजाबी, बंगाली, हिन्दुस्तानी, पारसी, गुजराती, मराठी और मद्रासियोंका पहनावा और आभूषण भिन्न भिन्न रूपका है । इसके अतिरिक्त जब हम अबसे सौ दो सौ वर्ष पहलेका हाल मालूम करते हैं तो अबसे भिन्न ही प्रकारके आभूषण पाते हैं और उससे भी सौ दो सौ वर्ष पहले उनसे भी भिन्न तरहके । गरज यह कि इस विचित्र संसारमें स्थान और समयके परिवर्तनके साथ मनुष्योंके वेश भी परिवर्तित हुआ करते हैं ।

परन्तु आदिपुराणमें हम इस परिवर्तनका कोई चिह्न नहीं पाते, यह बड़े आश्चर्यकी बात है । उसमें लाखों करोड़ों अबों और खबों वर्षोंके मध्यवर्ती सुदीर्घ समयोंमें और भरत क्षेत्र, विदेह क्षेत्र तथा स्वर्ग आदिके विभिन्न स्थानोंमें भी वस्त्राभूषणोंकी समानता बराबर दिखलाई देती है ।

### आभूषण ।

कर्मभूमिके आरंभका वर्णन ( पर्व ३ ) पढ़नेसे मालूम होता है कि उस समय नाभिरायने लोगोंको वृक्षोंके फलोंसे जीवननिर्वाह करना बतलाया, मिट्टीके वर्तन बनाकर दिये और उनका बनाना भी सिखलाया । उस समय आभूषण तो क्या बनेंगे, कपड़ोंका भी आविष्कार न हुआ होगा । परन्तु हम देखते हैं कि उस समय भी आदिपुराणमें आभूषणोंका कथन किया गया है और उन्हीं आभूषणोंका जिनका कि प्रत्येक समयके लोगोंके विषयमें किया गया है । जिस समय नाभिरायको मिट्टीके वर्तन बनानेके वास्ते दण्ड चक्र आदि मामूली औजार

भी प्राप्त नहीं हुए थे और इस कारण उन्होंने हाथीके कुम्भ-स्थल पर मिट्टी रखकर जैसे जैसे वर्तन बना लिये थे, उस समय सोनेके मुकुट, कुण्डल, हार, बाजूबन्द, घुँघरू, नूपुर, आदि आभूषण बनानेके औजार कहाँसे आये होंगे यह समझमें नहीं आता ।

गजकुम्भस्थले तेन मृदा निवर्ततानि च ।  
पात्राणि विविधान्येषा स्थालादीनि दयालुना ॥२०४॥  
-पर्व ३ ।

आदिनाथ भगवानके जन्मके दिन ही इन्द्राणीने भगवानके कानोंमें कुण्डल, गलेमें हार, भुजाओंमें बाजूबन्द, कटक ( कड़े ), अंगद ( अनन्त ), कमरमें घुँघरूओंकी तागड़ी, और पैरोंमें बजता हुआ आभूषण ( पैजना ) पहनाया ( पर्व १४ श्लोक १०-१४ ) । इसमें जन्मके ही दिन कुण्डल पहनानेकी बात बड़ी विलक्षण है और इससे भी अधिक विलक्षण बात यह है कि भगवान् गर्भसे ही कान छिदे हुए पैदा हुए थे ! ग्रन्थकर्त्ताको कुण्डल पहनाना इतना जरूरी मालूम हुआ कि इसके लिए उन्होंने गर्भमें ही कान छिद जानेकी असंभव कल्पनाको कर डाला, पर बिना कुण्डल पहनाये उनसे न रहा गया । हम इस बातको विलकुल असंभव समझते हैं और हमारी इस समझको प्रथम जिनसेनाचार्यकृत हरिवंशपुराण पुष्ट करता है । इस ग्रन्थके आठवें सर्गके श्लोक १७५-७६ में लिखा है कि भगवान्के वज्रके समान कठोर कानोंका इन्द्र वज्रमयी सूची द्वारा बड़ी कठिनतासे छेदन कर सका । कर्णवैधके बाद इन्द्रने भगवान्के कानोंमें कुण्डल पहनाये । आगे चलकर जब भगवान् कुछ बड़े हुए तब वे गलेमें हार और कमरमें घुँघरू पहनते थे ( पर्व १४ श्लोक २१३ ) । इसके बाद उनकी कुमारावस्थाके आभूषण मुकुट, मणिमय कुण्डल, विशालमणिसे

शोभित एक हजार आठ लड़ोंका मोतियोंका हार, बाजूबन्द और कमरके घुँघरू थे । ( पर्व १५ श्लोक ०५-२० ) । इसी प्रकार भगवान्की स्त्रियोंके आभूषण मुक्ताहार और बाजने नूपुर वर्णन किये गये हैं । भगवान्के भरत, बाहुबलि और अन्यान्य पुत्रों तथा पुत्रियोंके आभूषण भी लगभग यही बतलाये गये हैं ।

आगे चलकर भगवान्के राज्याभिषेकका वर्णन है । उस समय भी उन्हें वे ही आभूषण पहनाये गये हैं, जिनका वर्णन पहले किया जा चुका है ( पर्व १६, श्लोक २३४-३७ ) । फिर दीक्षा कल्याणकके समय इन्द्र आया है और उसने उन्हें दिव्य आभूषण पहनाये हैं; परन्तु पूर्वोक्त आभूषणोंके सिवाय हम देखते हैं कि उसके पास भी और कोई आभूषण न निकले ( पर्व १७, श्लोक ११८-२४ ) ।

इससे आगे २६ वें पर्वमें भरत महाराजके उस समयके आभूषणोंका वर्णन है जब वे दिग्वजय करनेको निकले हैं; परन्तु वे भी उन्हीं आभूषणोंमेंसे हैं जिनका वर्णन ऊपर आ चुका है, अर्थात् मुकुट, कुण्डल और मणिका हार । दिग्विजयके पश्चात् भरतकी ९६ हजार रानियोंका वर्णन करते हुए उनके हारों और पैरोंके बजनेवाले नूपुरोंकी शोभा बतलाई है ( पर्व ३७, श्लोक ९३-९८ ) । इसी बीचमें कुछ साधारण स्त्रियोंके आभूषणोंका भी जिक्र आया है; परन्तु उनके भी कोई जुदा तरहके आभूषण नहीं हैं । विजयार्थकी विधाधरियोंके ( पर्व ४, श्लोक १०० और पर्व १८, श्लोक १९६-२०० ), नगरकी स्त्रियोंके ( पर्व ४३, श्लोक २४८-५१ ), वनकी स्त्रियोंके ( पर्व १९, श्लोक १२९ ) और गाँवकी स्त्रियोंके ( पर्व २६, श्लोक १२६ ); इस तरह प्रायः सभी स्त्रियोंके प्रायः एकहीसे आभूषण वर्णन किये गये हैं । हार, नूपुर, कड़े, कमरकी तागड़ी, कुण्डल, बस ये ही आभूषण हैं;

जिन्हें ग्रन्थकर्ता सब स्त्रियोंके लिए उपयोगमें लाते हैं ।

यह तो हुई भगवान् आदिनाथके समयकी बात; अब आइए, उनके पहले भवोंके समयके भी आभूषण मालूम कर लें । तीर्थंकर भवसे पहले भगवान् सर्वाथिसिद्धिके अहमिन्द्र थे, जहाँ वे सागरों वर्षों तक रहे हैं और उससे भी पहले विदेह क्षेत्रमें राजा वज्रनाभ थे । देखते हैं, कि ग्रन्थकर्ता इन वज्रनाभको भी—जो भगवान् से अबों पदमों संखों वर्षोंसे भी बहुत पहले हुए हैं और एक बहुत दूरके भिन्न ही क्षेत्रमें हुए हैं—कुण्डल, हार, बाजूबन्द, और कमरके घुँघरू ही पहनाते हैं ( पर्व ११, श्लोक १७-४४ ) । वज्रनाभसे पहले भगवान्का जीव सोलहवें स्वर्गका इन्द्र था, जहाँ वह सागरों तक रहा और इससे भी पहले राजा सुविधि था, परन्तु वहाँ भी वह कुण्डल, हार, और कटिकिंकिणी पहनता था ( पर्व १० श्लो० १२७-३६ ) । इससे भी कई भवोंके पहले राजा वज्रजंघ और महाबल आदिकी पर्यायोंमें वह लगभग इन्हीं आभूषणोंसे सजाया गया है । स्त्रियोंके विषयमें भी लगभग यही बात है, अर्थात् वे भी प्रायः प्रत्येक समय और देशमें एकहीसे आभूषणोंसे भूषित की गई हैं ।

आगे जब हम स्वर्गके देवों और भोग भूमियोंके शृंगारको देखते हैं, तब हमें और भी अधिक आश्चर्य होता है, अर्थात् हमें वहाँ भी इन्हीं आभूषणोंके नाम मिलते हैं । ग्रन्थकर्ता महाराजने सबको एक ही सौचमें ढालनेका प्रयत्न किया है । यहाँ तक कि उनकी दृष्टिमें कुण्डल पहने बिना देव भी अच्छे न मालूम होते थे, इस कारण उनका कान छिदे हुए ही पैदा होना बतलाया है ! उधर भोगभूमियोंकी पूर्वोक्त आभूषणोंके साथ 'जनेऊ' का भी सदा पहने रहना बतलाया है ! भोगभूमियाँ अबती

होते हैं, तब मालूम नहीं उनके लिए यज्ञोपवीतका पहनना कैसे ठीक हो सकता है । इसके सिवाय उनके कर्णछिदनसंस्कार नहीं होता है, फिर भी उनके कानोंमें कुण्डल पहना दिये गये हैं ।

हमारे देशके लोगोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि आचार्य महाराजने स्त्रियोंके मुख्य आभूषण नथ या बेसरका—जो नाकमें पहना जाता है और स्त्रियोंके सुहागका मुख्य चिन्ह है—तथा काँच, लाख, या हाथीदाँतकी चूड़ियोंका—जिन्हें सौभाग्यवती स्त्रियाँ अवश्य पहनती हैं—क्यों वर्णन नहीं किया । परन्तु हमारी समझमें इसमें आश्चर्यकी बात कोई नहीं है । अबतकके कथन पर अच्छी तरह विचार करनेसे मालूम होता है कि ग्रन्थकर्ताने आभूषणोंका जो कुछ वर्णन किया है वह अपने ही समयके और देशके अनुसार किया है । अर्थात् उनके समयमें, उनकी जन्मभूमिमें और उनके परिचित प्रान्तमें स्त्रीपुरुषोंके जो कुछ आभूषण थे, उन्हें ही उन्होंने सब समयों और सब देशोंके लोगोंको पहनाया है । इस बातका विचार ही नहीं किया है कि समय और देशादिके भेदसे पहनाव-ओढ़ावमें परिवर्तन हुआ करता है ।

दक्षिण प्रान्तकी स्त्रियाँ अपने बालोंमें फूलोंकी माला गुँधवाती हैं । यह उनका बहुत ही प्यारा शृंगार है । उनके घुँघटरहित सुले सिरमें यह फूलोंका शृंगार मालूम भी बहुत भला होता है । आदिपुराणमें भी हम देखते हैं कि प्रत्येक समय और प्रत्येक देशकी स्त्रियाँ फूल-मालाओंसे सिर गुँधवाये हुए हैं । भगवान्की स्त्रियोंके विषयमें पर्व १५ श्लोक १५ में लिखा है कि उनके सिरके बाल फूलमालाओंसे गुँधे हुए थे, जिनके बंधन ढीले हो गये थे और इस कारण उनमेंसे फूल गिरते थे । भगवान्की माता जब चलती थीं तो उनकी फूलोंसे गुँधी हुई चोटी

ढाली हो जाती थी और उससे फूल झड़ते थे ( पर्व १२, श्लोक ५३ ) । विजयार्थकी विद्याधरियों ( पर्व १८, श्लोक १९२ ) के और स्वर्गकी देवांगनाओं ( पर्व ३४, श्लोक, १०६ ) के विषयमें भी यही लिखा है । यह इस बातका अच्छा सुवृत्त है कि ग्रन्थकर्त्ताने अपने देशके प्रचलित रीति-रवाजोंका ही वर्णन किया है । दाक्षिणात्य स्त्रियोंमें यह फूल गुँधवानेकी चाल बहुत पुराने समयसे चली आती है । प्रायः सभी समयोंके दाक्षिणात्य कवियोंकी रचनामें इसका उल्लेख मिलता है ।

### वस्त्र ।

वस्त्रोंके विषयमें भी यही बात है । सब देशों और सब समयोंके लिए ग्रन्थकर्त्ताने एक ही प्रकारके वस्त्रोंका वर्णन किया है । पुराने समयकी स्त्रियोंसे मालूम होता है कि, पहले वस्त्रोंमें प्रायः अन्तरीय और उत्तरीय अर्थात् धोती और दुपट्टा ये ही दो वस्त्र पहने जाते थे । ग्रन्थकर्त्ता महाराजके प्रान्तमें तो अब भी बहुतसे लोग इन्हीं दो वस्त्रोंको पहनते हैं और यही कारण है जो आदिपुराणमें वस्त्रोंका नामोल्लेख बहुत ही कम है और जहाँ कहीं है वहाँ इन्हीं दो वस्त्रोंका ।

वस्त्रांग जातिके कल्पवृक्षोंके विषयमें लिखा है कि वे कोमल, चिकने और बहुमूल्य रेशमके प्रावार और परिधान देते हैं:—

चीनपद्दुकूलानि प्रावारपरिधानकं ।

मृदुश्लक्ष्णमहाघाणि वस्त्रांगा दधति द्रुमाः ॥ ४८ ॥

—पर्व ९ ।

प्रावारका अर्थ ओढ़नेकी चादर और परिधानका अर्थ अधोवस्त्र या धोती है । इससे मालूम होता है कि, भोगभूमियाँ इन्हीं दो वस्त्रोंका उपयोग करते थे ।

आगे जब भरतमहाराज दिग्विजयको चले हैं, उस समय लिखा है कि वे सफेद, कोमल और

बारीक दो वस्त्र पहने हुए थे ( पर्व २६, श्लोक ६२ ) । सोलहवें स्वर्गके इन्द्रका वर्णन करते हुए उसके कटिवस्त्रका ही उल्लेख किया गया है ( पर्व १० श्लोक १८१ ) । राजा वज्रनाभके वर्णनमें भी कटिवस्त्रकी ही प्रशंसा की गई है ( पर्व ११ श्लोक ४४ ) । इसके सिवाय ग्रन्थमें यदि दृष्टान्तके तौर पर भी कहीं वस्त्रोंका नाम आया है, तो धोती और चादरका ही ।

स्त्रियोंके वर्णनमें इतनी विशेषता है कि चादरके स्थानमें उनके स्तनवस्त्रका जगह जगह उल्लेख हुआ है । मालूम नहीं है, इससे ग्रन्थकर्त्ताका अभिप्राय चोलीसे है या साड़ीसे । पर यह वस्त्र भी स्वर्ग और मर्त्यलोकमें सर्वत्र एकसा है । आठवें पर्वके २४-२५ वें श्लोकमें लिखा है—जलक्रीड़ाके समय श्रीमती भी वज्रजंघ पर पानी फेंकना चाहती थी; परन्तु ऐसा करते समय स्तनवस्त्रके खिसक जानेसे वह लज्जित होकर रह जाती थी और उसका स्तनवस्त्र पानीसे भीगकर स्तनोंसे चिपककर अपूर्व शोभा देता था । आगे पर्व १२ श्लोक ३४ में माता मरुदेवीका स्वरूप वर्णन करते हुए लिखा है कि कुंकुम लगे हुए और वस्त्रसे ढके हुए उसके दोनों स्तन ऐसे मालूम होते थे, मानों आकाशगंगामें लहरोंसे रुके हुए दो चक्रवाक ही हैं । इसी प्रकार अन्य स्त्रियोंके भी स्तनवस्त्रका कथन आया है और स्वर्गके देवियोंके भी स्तनवस्त्रोंकी शोभाका वर्णन किया गया है । गरज यह कि, स्त्रियोंके वस्त्र भी सर्वत्र और सब समयोंमें एकसे बतलाये गये हैं ।

### विलेपन ।

आजकल कोई कोई ब्राह्मण अपने सारे शरीरको विशेष कर छातीको चन्दनसे लीपते हैं । मालूम होता है कि ग्रन्थकर्त्ताके समयमें इसका बहुत अधिक प्रचार था । क्योंकि आदिपुराणमें स्वर्गके देवों, भोगभूमियों, सारे क्षेत्रों और सारे ही समयोंके कर्मभूमियोंके शृंगारमें



उनकी छाती पर लगे हुए चन्दनकी शोभाका वर्णन किया गया है । ( देखो पर्व ३ श्लो० ७८, पर्व ६ श्लो० ३६, पर्व २६ श्लोक ६१, पर्व ३१ श्लो० ३९। ) स्त्रियोंकी छातियों पर भी चन्दनके लेपका जगह जगह उल्लेख है । ( देखो पर्व १८ श्लो० १४, पर्व ९ श्लो० ११ आदि । )

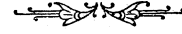
मालूम होता है, उस समय स्त्रियोंमें स्तनों पर और स्तनोंके चुचुकोंपर भी केसर लगा-नेकी रीति थी । यह बहुत ही शोभाकी बात समझी जाती थी । अप्सराओं और देवांगनाओंके विषयमें भी इसका कथन किया है, यहाँ तक कि भगवान्‌के समवसरणमें जो बावड़ियाँ बनी हुई थीं, उनमें देवांगनाओंके नहाने और उनके स्तनों पर लगी हुई केसरके धुल जानेसे उनका पानी पीला हो जाता था ( पर्व २२, श्लो० १७४ ) ।

स्त्रियोंके तलवोंको लाक्षारस ( महावर ) से रँगने और कपोलों पर चित्र बनानेका भी प्रायः सर्वत्र ही वर्णन है और इन रीतियोंको भी नारियों और देवांगनाओंमें सबमें एकसा चलाया है ।

सारांश इन सब बातोंका यह है कि ग्रन्थकर्ताने वेष भूषादिके सम्बन्धमें जो कुछ वर्णन किया है, उससे इस बातका पता नहीं लग सकता कि जिन जिन प्राचीन कालोंकी और जिन जिन स्थानोंकी कथायें लिखी गई हैं, उन सब कालों और स्थानोंके रीति रवाज और पहनने-ओढ़ने आदिके ढंग क्या थे । अधिकसे अधिक ग्रन्थकर्ताके समयकी और परिचयकी ही वेषा-भूषासम्बन्धी बातें इस ग्रन्थसे मालूम हो सकती हैं । उन्हें दिव्यध्वनिके अनुसार 'बावन तोला पाव रत्ती' समझ लेना, या उन परसे प्राचीन

ऐतिहासिक खोज करनेकी आशा रखना मूर्खता नहीं तो भोलापन अवश्य है । \*

## सतयुगकी वेश्यायें ।



जैनहितैषीके गत अंकमें श्रीयुत बाबू सूरजभानजी वकीलने अपने 'आदिपुराणका अवलोकन' शीर्षक लेखमें यह दिखलाया था कि सतयुगमें वेश्याओंका बहुत अधिक आदर था । इस पर जैनमित्रके श्रद्धालु सम्पादक ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीने लिखा है कि चौथे कालमें ऐसी व्यभिचारिणी वेश्यायें नहीं हो सकती हैं जैसी कि आजकल होती हैं । वे तो नाच-गाकर ही लोगोंका चित्त प्रसन्न करती थीं । यह एक ऐसी बात है कि, जिसे साधारण बुद्धिका आदमी भी नहीं मान सकता है कि जो बड़ी बड़ी सभाओंमें, दरबारोंमें अपने रूपको और हावभावविलासोंको दिखाकर लोगोंको रिझाती हैं, वे शीलवती या पतिव्रता होती होंगी । हमारी समझमें ब्रह्मचारीजीका हृदय भी इस बातको न मानता होगा, परन्तु उन्हें लोगोंकी श्रद्धा घट जानेका बड़ा डर है, और श्रद्धालु समाजमें अपनी श्रद्धा बनाये रखनेका बड़ा चाव है, इस लिए हृदयसे विरुद्ध भी उन्हें ऐसी ऐसी बेसिरपैरकी बातें लिखनेके लिए विवश होना पड़ता है ।

आदिपुराणके जो श्लोक उस लेखमें दिये गये थे उनमें वारनारी, वारयोषा, वेश्या, गणिका आदि शब्दोंका प्रयोग किया गया है । इन शब्दोंका वह अर्थ किसी भी जैन अजैन कोशमें नहीं मिलता है, जो ब्रह्मचारीजी करना चाहते हैं । 'वारस्य

\* यह लेख बहुत बड़ा था—इसे लगभग ढाई गुना होगा; परन्तु स्थानकी कमीसे संक्षिप्त कर दिया गया है । संक्षिप्त करनेमें यदि कोई गलती हो गई हो, तो उसका उत्तरदायित्व सम्पादक पर है—लेखक पर नहीं ।

—सम्पादक ।

जनसमूहस्य योषा साधाणत्वात् वारयोषा ।' अर्थात् जो जनसमूहकी स्त्री हो, उसे वारयोषा या वारनारी कहते हैं । और 'गणः समूहोऽत्यस्याः भर्तृत्वेन गणिका ।' अर्थात् जिसका पुरुष-समूह पति हो, उसे गणिका कहते हैं । प्रायः सर्वत्र ही इन शब्दोंकी व्युत्पत्ति इसी रूपमें की गई है । अतः इन शब्दोंका और कोई अर्थ बतलाना जबरदस्ती है ।

और ब्रह्मचारीजीने आदिपुराणको भी तो अच्छी तरह देखनेकी कृपा नहीं की । उसमें ही ऐसे कई प्रसङ्ग इन सतयुगकी वेद्याओंके सम्बन्धमें आये हैं, जिनसे उनका व्यभिचारिणी होना ही सिद्ध होता है, ब्रह्मचारिणी नहीं ।

१. आदिपुराणके पर्व ४६ में एक कथा लिखी है कि पुष्कलावती देशकी पुण्डरीकिनी नगरीका राजा गुणपाल था । एक दिन उसके सामने नाट्यमाला नामकी एक नटपुत्रीने बहुत ही बढ़िया नृत्य किया । उसे देखकर राजाको बहुत ही विस्मय हुआ । तब उत्पलमाला नामकी वेद्या बोली—महाराज, नटिनीके इस नृत्यमें कौनसा आश्चर्य है ? आश्चर्यकी बात तो यह है कि इस नगरके सेठ कुबेरप्रियका मन ढिगानेके वास्ते मैंने एक दिन बहुत प्रयत्न किया, परन्तु न ढिगा सकी । इस पर राजा प्रसन्न हुआ और बोला कि वर माँग । वेद्याने शील पालनेका वर माँगा; कहा कि मुझे शील ही प्यारा है । राजाने वर दे दिया और उसने शीलव्रत धारण कर लिया । दूसरे दिन रातको सर्वरक्षित नामका कोतवाल उसके पास आया । वेद्या बोली, मैं तो रजस्वला हूँ । इतनेमें ही राजाका साला प्रथुधी-जो मंत्रीका पुत्र था—वहाँ आ पहुँचा । यह देख वेद्याने कोतवालको तो सन्दूकमें छुपा दिया और प्रथुधीसे कहा, तुमने जो मेरे सारे आभूषण अपनी बहनको दे दिये थे, उन्हें वापस ले आओ । वह बोला—हाँ, अभी लाता हूँ । पीछे

उसने सुना कि वेद्याने शीलव्रत ले लिया है, इस लिए वह प्रतिकूल हो गया और आभूषण नहीं लाया । दूसरे दिन वेद्याने कोतवालको गबाह बनाकर अपना मामला दरबारमें पेश किया । परन्तु पृथुधी आभूषणोंकी बातसे इन्कार कर गया । तब राजाने अपनी रानीसे इस विषयमें पूछा । उसने सारे आभूषण सामने लाकर रख दिये । इस पर राजा अपने साले पर बहुत क्रुपित हुआ और बोला—इसे मार डालो ।

यह कथा उक्त पर्वके २८९ वें से लेकर ३१० वें तकके श्लोकोंमें लिखी गई है । जिन पाठकोंको कुछ सन्देह हो वे वहाँ देख सकते हैं । उत्पल मालाके लिए वहाँ गणिका शब्दका ही प्रयोग किया गया है । कथासे साफ साफ मालूम होता है कि वह व्यभिचारिणी थी और सर्वरक्षित, पृथुधी आदि व्यभिचारके लिए ही उसके यहाँ आया करते थे । कमसे कम कुबेरप्रिय सेठके साथ तो वह व्यभिचार ही करना चाहती थी । मैं शीलव्रत ग्रहण करती हूँ, इसका अर्थ ही यह है कि मैं पहले व्यभिचारिणी थी ।

२. इसी पर्वमें भीम नामक दरिद्रीकी कथाका वर्णन करते हुए लिखा है कि मुनिराजने उसे आठ व्रत दिये थे, जिन्हें उसके पिताने नापसन्द किया और वह भीमको उन्हें वापस करानेके लिए मुनिके पास लेकर चला । मार्गमें भीमने इन आठों व्रतोंसे विपरीत चलनेवाले आठ मनुष्योंको देखा, जिन्हें घोर दण्ड मिल रहा था । उनमें एक ऐसे अपराधीको भी देखा जिसने सेठके घरसे एक बहुमूल्य हार चुराकर वेद्याको दे दिया था । इससे भी मालूम होता है कि वह वेद्या व्यभिचारिणी थी और धनके बदलेमें अपना शरीर बेचती थी । मूल श्लोकमें यहाँ भी गणिका शब्दका ही प्रयोग हुआ है— 'चौर्येण गणिकायै समर्पणात् ।' (पर्व ४६, श्लो० २७५ ।)

३. पर्व ८ में एक पुरुषके विषयमें लिखा है कि, उसने एक दिन राजाके कुठारियोंसे जबर्दस्ती धी चावल आदि छीनकर वेश्याओंको दे दिये—“ बलादादाय वेश्याभ्यः संप्रायच्छत दुर्मदी ’ ( श्लो० २२५ ) । यहाँ वेश्या शब्दका प्रयोग हुआ है ।

४. पर्व ६, श्लोक १८१ में महापूत चैत्यालयकी दीवारोंको वेश्याओंकी उपमा दी गई है:—

वर्णसांकर्यसंभूतचित्रकमोन्विता अपि ।

यद्रित्तयो जगच्चित्तहारिण्यो गणिका इव ॥

अर्थात् उस मन्दिरकी दीवालें ठीक वेश्याओंके समान थीं । जिस तरह वेश्यायें वर्णसंकरतासे उत्पन्न हुए विचित्र पापकर्मोंकी करनेवाली होकर भी संसारकी चित्त हरण करती हैं, उसी प्रकार वे दीवालें भी अनेक वर्णोंसे बनाये हुए चित्रोंसे जगत्का चित्त हरण करती थीं । इसमें वेश्याओंको जो ‘ वर्णसांकर्यसंभूतचित्रकमोन्विता ’ विशेषण दिया है, वह बतलाता है कि, वेश्यायें अनेक वर्णोंके लोगोंसे सम्बन्ध रखती थीं ।

५. पर्व ४ के ७३ वें श्लोकमें गन्धला देशकी नदियोंको वेश्याओंकी उपमा दी है और उसमें उन्हें वेश्याओंके समान सर्वभोग्या ( सबके द्वारा भोगी जानेवाली ) बतलाया है:—

विपंका प्राहवात्यश्च स्वच्छाः कुटिलवृत्तयः ।

अलंभ्याः सर्वभोग्याश्च विचित्रा यत्र निम्नगाः ॥

इन प्रमाणोंसे अच्छी तरह सिद्ध होता है कि आदिपुराणके कर्त्ता वेश्याओं या गणिकाओंको ब्रह्मचारिणी या शीलवती नहीं समझते थे, जैसा कि ब्रह्मचारीजी समझते हैं । अतएव अब ब्रह्मचारीजीको लोगोंकी श्रद्धा बनाये रखनेके लिए और अपनी श्रद्धालुता प्रकट करनेके लिए कोई दूसरा प्रयत्न करना चाहिए ।

हमें भय है कि ब्रह्मचारीजी अब कहीं सत-युगके मद्यको भी पवित्र और जीवराशिरहित सिद्ध करनेका प्रयत्न न करने लगे ।

## अलंकारोंसे उत्पन्न हुए देवी-देवता ।

( ले०, श्रीयुत बाबू सूरजभानजी बकील । )

इस देशके साहित्यमें अलङ्कारोंकी भरमार है । यहाँके कवि और आचार्य सदासे ही अलङ्कार शास्त्रके भक्त रहे हैं । उन्होंने साधारणसे साधारण बात कहनेमें भी अलंकारोंका प्रयोग किया है । इन अलंकारोंने जहाँ यहाँके साहित्यकी शोभाको बढ़ाया, वहाँ एक हानि भी पहुँचाई है । इनकी कृपासे प्रकृतिके अनेक दृश्य वास्तविक देवी देवता बन गये हैं और सर्व साधारणमें माने पूजे जाने लगे हैं । भारतकी सभ्यता और साहित्यका प्राचीन इतिहास लिखनेवाले विद्वानोंने इस बातको मली माँति सिद्ध कर दिया है कि हिन्दू पुराणोंके अनेक देवी देवता और उनकी कथायें वेदोंके आलंकारिक वर्णनोंसे गढ़ी गई हैं, जैसा कि ऋग्वेदके सूर्य और उषाके आलंकारिक वर्णनसे सूर्य देवता और उसकी पुत्री उषाकी अद्भुत कथाका गढ़ा जाना प्रसिद्ध है ।

हम देखते हैं कि जैनधर्मके कथाग्रन्थोंमें भी अलङ्कारोंने वास्तविकताका रूप धारण कर लिया है और बहुतसे देवी देवताओंके अस्तित्वको जैनधर्मके श्रद्धालुओंके हृदयमें स्थापित कर दिया है ।

श्री ( शोभा ), ही ( लज्जा ), धृति ( धीरज ), कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी ( विभूति ) ये छः बातें मनुष्यकी बड़ाईकी हैं और ये बड़े मनु-

प्योंकी प्रशंसा करनेके व्यवहारमें लाई जाती हैं। ये छहों शब्द स्त्रीलिंग हैं, इस कारण आलंकारिक वर्णनोंमें इन्हें स्त्रीका रूप दिया गया है। पृथक् पृथक् छः स्त्री मानकर ही इनका कथन किया जाता है। जैसा कि आदिनाथ भगवानकी माताके विषयमें लिखा है कि श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि, और लक्ष्मी ये छः देवियाँ अपने अपने गुणोंसे माताकी सेवा करने लगीं। श्रीने शोभा बढ़ाई, ह्रीने लज्जा बढ़ाई, धृतिने धीरज बढ़ाया, कीर्तिने यश फैलाया बुद्धिने बोध दिया, और लक्ष्मीने विभूति बढ़ाई। इस सेवाके संस्कारसे माता ऐसी सुशोभित होने लगी जैसे अग्निके संस्कारसे मणिः—

श्रीह्रीधृतिश्च कीर्तिश्च बुद्धिलक्ष्म्यौ च देवताः ।  
श्रियं लज्जां च धैर्यं च स्तुतिं बोधं च वैभवम् ॥  
तस्यामादधुरभ्यर्णवर्तिन्यः स्वानिमान् गुणान् ।  
तत्संस्काराच्च सा रेजे संस्कृतेवाग्निना मणिः ॥१७१॥

—आदिपुराण पर्व १२ ।

आदिपुराणमें इसी प्रकार और भी अनेक महान् पुरुषोंके वैभव, ज्ञान और यशकी प्रशंसा इन तीनों विशेषणोंको तीन स्त्री मानकर और उनका लक्ष्मी, सरस्वती और कीर्ति नाम रखकर ही की गई है। वज्रदन्त चक्रवर्तीके विषयमें पर्व ६ में लिखा है कि वह लक्ष्मीको तो छाती पर धारण करता था और सरस्वतीको मुखकमलमें, परन्तु अतिशय प्यारी कीर्तिको उसने अकेली ही लोकके अन्ततक भेज दिया थाः—

स विभ्रदक्षसा लक्ष्मीं बक्त्राब्जेन चा वाग्बधूं ।  
प्राणाय्यामिव लोकान्तं प्राहिणोत्कीर्तिकिकां २००

आगे पर्व ११ में वज्रनाभिके विषयमें लिखा है कि लक्ष्मी और सरस्वती उससे बहुत ही ज्यादा प्रेम करती थीं, यह देखकर उसकी कीर्ति ईर्ष्यावश चली गई थी—दिगन्तव्यापिनी हो गई थीः—

तस्मिंलक्ष्मीसरस्वत्योरतिवाह्यभ्यमाश्रिते ।  
ईर्षयेवाभजत्कीर्तिदिगन्तान्विधुनिर्मेला ॥ ३४ ॥

आगे पर्व १५ में लिखा है कि भगवान् आदिनाथकी बुद्धि और कल्पान्त कालतक रहनेवाली कीर्ति, ये दो ही प्यारी स्त्रियाँ थीं; लक्ष्मी-पर उनका बहुत कम प्रेम था। क्योंकि वह विजलीके समान चंचल होती हैः—

सरस्वती प्रियास्यासीत्कीर्तिश्चाकल्पवर्तिनी ।  
लक्ष्मीतल्लिखतालोलं मन्दप्रमणैव सोवद्दत् ॥ ४८ ॥

इसी प्रकार पर्व ३१ में भरतजीकी स्तुति करते हुए लिखा है कि आपकी कीर्ति निरंकुश होकर सारे लोकमें अकेली फिरा करती है और सरस्वती वाचाल है, न जाने स्वामिन्, आपकी ये दोनो स्त्रियाँ क्यों प्यारी हो रही हैंः—

अमल्येकाकिनो लोकं शश्वतकीर्तिरनर्गला ।  
सरस्वती च वाचाला कथं ते ते प्रिये प्रभो १०६

यद्यपि श्रीका अर्थ शोभा और लक्ष्मीका अर्थ विभूति होता है; परन्तु श्रीका अर्थ भी लक्ष्मी होता है, इस कारण इन दोनों शब्दोंको एकार्थवाची मानकर आदिपुराणमें लक्ष्मीको भी प्रायः शोभा या सुन्दरताके अर्थमें व्यवहृत किया है और उसे स्त्री मानकर उसके अनेक रूपक बनाये हैं। जैसे राज्यलक्ष्मी, स्वर्गलक्ष्मी, वनलक्ष्मी, तपोलक्ष्मी, वीरलक्ष्मी, शरलक्ष्मी आदि।

**राज्यलक्ष्मी** । राजपुत्र वज्रजंघकी प्रशंसामें लिखा है कि वह राज्यलक्ष्मीके कटाक्षोंका निशाना बन गया थाः—‘राज्यलक्ष्मीकटाक्षाणां लक्ष्यतामगमत्कृती ।’ (पर्व ६, श्लो० ४५) । आगे वज्रनाभिकी प्रशंसामें लिखा है कि वे राज्यलक्ष्मीके समागमसे सन्तुष्ट थे—‘राज्यलक्ष्मी-परिध्वंगाद्वाज्रनाभिस्तुतोष सः ।’ (पर्व ११, श्लो० ५०) ।

**स्वर्गलक्ष्मी** । ललितांग देवकी देवी स्वयंप्रभा

अपने पतिकी गोदमें ऐसी मालूम होती थी मानों स्वर्ग-लक्ष्मी ही रूप धारण करके बैठी है—‘पत्युरंकगता रेजे कल्पश्रीरिव रूपिणी ।’ (पर्व ५, श्लो० २९०) । यहाँ लक्ष्मीके वास्ते श्री शब्द आया है और स्वर्गलक्ष्मीका अर्थ स्वर्गकी समस्त शोभा है । भगवानके जन्माभिषेकके समय स्वर्गसे छोटी छोटी बूँदोंके साथ जो पुष्पवृष्टि हो रही थी वह ऐसी मालूम होती थी, मानों स्वर्गलक्ष्मीके आनन्दके आँसू पड़ रहे हों—‘मुक्तानन्दाश्रुविन्दूनां श्रेणीवन्निदिवश्रिया ।’ (पर्व १३, श्लो० २०४) । पर्व ६ में यशोधर तीर्थकरका कथन करते हुए लिखा है कि उस समय चारों तरफ पुष्पवृष्टि हो रही थी और उन पुष्पों पर बैठे हुए भ्रमर ऐसे मालूम होते थे, मानों भगवानके दर्शनके लिए स्वर्गलक्ष्मीने अपने नेत्र भेजे हों—‘स्वर्गलक्ष्म्येव तं द्रष्टुं प्रहिता नयनावली ।’ (श्लो० ८७) ।

**वनलक्ष्मी** । राजा वज्रजंघने जब वनमें डेरा डाला तब वहाँ कपड़ोंके बने हुए तम्बू ऐसे जान पड़ते थे मानों वनलक्ष्मीने आगामी होनेवाले तीर्थकरके लिए मन्दिर ही तैयार किये हों—‘कृप्ता वत्स्यजिनस्यास्य वनश्रीभिरिवा-लयाः ।’ (पर्व ८, श्लो० १६१) । पर्व २७ में लिखा है कि अपनी पूँछका भार धारण करता हुआ यह मोर इस प्रकार धीरे धीरे चल रहा है, मानों अपनी पूँछके द्वारा वनलक्ष्मीके केशपाशकी ही शोभाको बढ़ा रहा है—‘कलापी बर्हभारेण मन्दं मन्दं ब्रजत्यसौ । केशपासश्रियं तन्वन्वनलक्ष्म्यास्तनूरुहैः ।’ (श्लोक ७५) । इसी वनकी शोभामें लिखा है कि वनके घने वृक्ष ऐसे जान पड़ते थे, मानों वनलक्ष्मीने मण्डप बनाये हों और छोटे छोटे सरोवर ऐसे जान पड़ते थे, मानों वनलक्ष्मीने प्रपा या प्याऊ ही बिठाई हों—‘त्वद्भक्त्यै वनलक्ष्म्येव मंडपा विनि-

वेशिताः ।’ (८१) । स्थापिता वनलक्ष्म्येव प्रपा मांतिमकृच्छिदः ।’ (८२) ।

**तपोलक्ष्मी** । महाराज वज्रसेन तपोलक्ष्मीके समागमसे बहुत सन्तुष्ट थे—‘तपोलक्ष्मीसमा-संगाद्गुरुरस्याति पिप्रिये ।’ (पर्व ११-५०) धरणेन्द्रने भगवान्के शरीरको तपोलक्ष्मीसे आलिंगित देखकर आश्चर्य किया—‘वित्तिष्मिये तपोलक्ष्म्या परिरब्धमधीद्धया ।’ (प० १८, १०५) ।

**मोक्षलक्ष्मी** । महाराज वज्रसेनने दीक्षा लेकर मोक्षलक्ष्मीको प्रसन्न किया—‘परिनिष्कम्य चक्रेसौ मुक्तिलक्ष्मीं प्रमोदिनीं ।’ (११-४७) । भग-वन्, मुक्तिलक्ष्मी बहुत ही उत्सुक होकर आपमें प्रेम रखती है—‘त्वयि प्रणयमाधत्ते मुक्तिलक्ष्मीः समुत्सुका ।’ (१३-४६) ।

**जयलक्ष्मी** । वक्षःस्थल पर रहनेवाली लक्ष्मीके गृह तक ऊँचे पहुँचे हुए भगवान्के दोनों कन्धे ऐसे सुशोभित होते थे, मानों जयलक्ष्मीके निवास करने योग्य दो ऊँची अटारी हों—‘जयलक्ष्मीकुंतावासौ तुंगावट्टालिकाविव ।’ (१५-१९) । जयलक्ष्मीने बड़े प्रेमसे भरतकी भुजाओंकी अधीनता स्वीकार की थी—‘जयश्री भुजयोरस्य बबन्ध प्रेमनिघ्नतां ।’ (१५-१९५) । भगवान्के पुत्रोंकी छाती लक्ष्मी द्वारा आलिंगित थी और उनके कंधे विजयलक्ष्मीसे आलिंगन किये हुए थे—‘वक्षो लक्ष्म्या परिष्वक्तमसौ च विजयश्रिया ।’ (१६-३९) ।

**शरलक्ष्मी** । शरतऋतुरूपी लक्ष्मी बड़ी भली मालूम होती थी; नीलकमल उसके नेत्र और सफेद कमल उसका मुख था—‘नीलोत्पलेक्षणा रेजे शरच्छ्री पंकजानना ।’ (२६-१२) ।

**वीरलक्ष्मी** । इन्द्रकी भुजाओं पर नाचती हुई देवांगनायें वीरलक्ष्मियोंके समान जान पड़ती थीं—‘अध्यासीना भुजानस्य वीरलक्ष्म्य इवा-पराः ।’ (१४-१४०) ।

इस प्रकार अनेक विशेषणोंको स्त्रीका या लक्ष्मीका रूप देते हुए संसारकी सारी ही शोभाओंको समुच्चयरूप लक्ष्मीका रूप दे दिया गया है और होते होते वह सुन्दरताकी एक आलंकारिक देवी बन गई है ।

१. पर्व १४ वें में लिखा है कि इन्द्रकी भुजाओं पर नाचती हुई देवांगनायें ऐसी मालूम होती थीं मानों अनेक शरीर धारण कर मूर्तिमान लक्ष्मी ही नृत्य कर रही हो ।—‘रोजिरे परि-नृत्यन्तो मूर्तिमन्ता इव श्रियः ।’ ( ३९ ) । इसमें शोभाको ही लक्ष्मी बनाया है ।

२. उसके पैरोंमें शंख चक्र आदि शुभ लक्षण ऐसे सोहते थे, मानों लक्ष्मीने ही ये सब लक्षण अंकित किये हों—‘शंखचक्रांकुशादीनि लक्षणान्यस्य पादयोः । बभुरालिखितानीव लक्ष्म्या लक्ष्माणि चक्रिणः ।’ ( ६-१९८ ) । इसमें लक्ष्मी शोभाकी एक अधिकारिणी देवी बन गई है ।

३. भगवानकी दोनों जंघायें ऐसी कान्तियुक्त थीं मानों स्वयं लक्ष्मीने ही उनको उबटन मलकर उज्ज्वल किया हो—‘लक्ष्म्येवोद्धतिर्ते भर्तुः परां कान्तिमवापतां ।’ ( १५-२५ ) ।

४. बाहूबलिके दोनों उरु ऐसे मालूम होते थे, मानों वे लक्ष्मीकी हथेलीके बार बार स्पर्श होनेसे ही बहुत उज्ज्वल हो गये हों—‘लक्ष्मीतलाजस्रस्पर्शादिव समुज्ज्वलौ ।’ ( २६-२० ) ।

इस प्रकार शोभाया सुन्दरताको एक स्त्रीका रूपक देकर और उसका नाम श्री या लक्ष्मी रखते रखते मनुष्योंकी सुन्दरताके वर्णनमें उसकी उपमा भी दी जाने लगी । यथा—पर्व ६ श्लोक ५९ में वज्रदन्तकी रानीको लक्ष्मीके समान सुन्दर बतलाया है ।—‘लक्ष्मीरिवास्वकान्तांगी लक्ष्मीमतिरभूत्प्रिया ।’ वज्रदन्तकी कन्याको भी लक्ष्मीके समान कान्तियुक्त लिखा है—‘सत्प्रसूतिरियं

सूता यया लक्ष्मीसमद्युतिः । ( ७-२५९ ) । नाभिराजा मरुदेवीको रूप और लावण्यमें लक्ष्मीके समान मानते थे ।—‘रूपलावण्यसम्पत्या पत्या श्रीरिव सा मता ।’ ( १२-६३ ) । भगवानके समीप बैठी हुई उनकी स्त्री ऐसी शोभती थी मानों साक्षात् लक्ष्मी ही हो । ‘लक्ष्मीरिव रुचिं भेजे भर्तुरभ्यर्णवर्तिनी ।’ ( १५-१२१ )

इस प्रकार शोभा या सुन्दरता एक देवी मान ली गई । इसके बाद अब उसके लिए और और भी तैयारियाँ हुईं । उसके स्नानघर, खेलनेके स्थान आदि भी कल्पित किये गये ।

उसकी विशाल छाती हारकी किरणोंके जलसे भरी हुई ऐसी मालूम होती थी, मानों लक्ष्मीके स्नान करनेका धारागृह ही हो । ‘पृथुवक्षो बभारासौ हाररोचिर्जलप्लवं, धारागृहमिवोदारं लक्ष्म्या निर्वापणं परं ।’ ( ४-१८० ) । राजा महाबलका ऊँचा और विस्तीर्ण ललाट ऐसा मालूम होता था, मानों लक्ष्मीके विश्रामके लिए सुवर्णमय शिलातल ही हो । ‘लक्ष्म्या विश्रान्तये क्लृप्तमिव हैमं शिलातलं ।’ ( ४-१७४ ) । उसके दोनों कन्धे लक्ष्मीके विहार करनेके क्रीडापर्वत सरसिखे मालूम होते थे । ‘क्रीडाद्रिरुचिरौ लक्ष्म्या विहारायैव निर्मितौ ।’ ( ४-१४१ ) । उसकी छाती पर लटकती हुई हारवल्लरी लक्ष्मीदेवीके झूलनेकी रस्सी जैसी मालूम होती थी । ‘लक्ष्मीदेव्या इवान्दोलनवल्लरी हारवल्लरी ।’ ( १५-१९४ ) । इसमें लक्ष्मीके साथ देवी विशेषण भी स्पष्ट रूपसे लगा दिया गया है । भगवानके उरु लक्ष्मीदेवीके झूलके खंभोंके समान मालूम होते थे ।—‘लक्ष्मीदेव्या इवान्दोलरतंभयुग्मकमुच्चैः ।’ ( १५-२४ ) । भरतका ऊँचा और गोल सिर विधाताके बनाये हुए लक्ष्मीके दिव्य छत्रके समान जान पड़ता था ।—‘घात्रा निवेशितं दिव्यमातपत्रमिव श्रियः ।’ ( १५-१७४ ) ।

इन उदाहरणोंसे पाठकोंने जान लिया होगा कि एक ही अलंकार अधिक काममें आनेसे किस प्रकार आहिस्ता आहिस्ता देवी देवताका स्वरूप धारण करने लगता है ।

आदिपुराण जैसे संस्कृत काव्यग्रन्थोंकी पढ़नेसे मालूम होता है कि संस्कृतके कवि संसार भरकी सब वस्तुओंमें कमलको ही सबसे अधिक सुन्दर और शोभायमान मानते हैं । इसी कारण वे स्त्री-पुरुषोंके आँख, मुख, हाथ, पैर और स्तन आदि अंगोंको प्रायः कमलोंकी ही उपमा दिया करते हैं । इसीसे हिन्दीके एक प्रसिद्ध लेखकने एक बार लिखा था कि संस्कृत कवियोंने तो सुन्दर मनुष्यको मानो कमलोंका ही एक ढेर बना दिया है ।

जब कमल इतने सुन्दर माने गये हैं, तब सुन्दरताकी आलंकारिक देवी लक्ष्मीका निवास कमलोंको छोड़कर भला और कहाँ हो सकता था ? पर्व २२ में ध्वजाओंकी शोभा वर्णन करते हुए लिखा है कि उन ध्वजाओंमें जो कमल बने हुए थे उनकी शोभा अद्वितीय थी । इसी कारण लक्ष्मी सारे कमलोंको छोड़कर उनमें ही जा बसी थी ।—‘कंजान्युत्सृज्य कात्स्येन लक्ष्मीस्तेषु पदं दधे ।’ ( पर्व २२-२२७ ) ।

इस तरह कमलोंमें ही लक्ष्मी अर्थात् शोभाको मानते मानते और सुन्दर स्त्री-पुरुषोंके चरणोंको कमलोंकी उपमा देते देते उनके चरणोंमें ही लक्ष्मीका निवास बतलाया जाने लगा । यथा—मरुदेवीके चरण कमलके समान थे और उनमें साक्षात् लक्ष्मी निवास करती थी । उन चरणोंकी अंगुलियाँ कमलकी पँखुरियों और नखोंकी कान्ति कमलकी केसरके समान थी ।—‘मृदुंगुलिदले तस्याः पादाब्जे श्रियमूहतुः । नखदीधितसन्तानलसत्केसरशोभिनी ।’ ( १२-१९ ) । पर्व ४ के श्लोक १८७, १५ के २०६ और १६ के श्लोक २२ में भी इसी तरह चरणोंको कमल और लक्ष्मीका निवास वर्णन किया है ।

इस प्रकार लक्ष्मी अर्थात् शोभाका वास कमलोंमें माननेसे और लक्ष्मीको स्त्रीका रूपक देकर आलंकारिक वर्णनोंमें उसका अति व्यवहार करनेसे उसको सुन्दरताकी एक विशेष देवी मान लिया है और फिर धीरे धीरे कमलोंको लक्ष्मी देवीका ही निवासस्थान मान लिया है । अब जरा आगे चालिए ।

अनेक रत्नोंकी किरणोंसे अत्यन्त मनोहर राजा सुबिधका विशाल वक्षःस्थल ऐसा मालूम होता था, मानों कमलनिवासिनी लक्ष्मीका अनेक जलते हुए दीपकोंसे शोभायमान निवासस्थान ही हो ।—‘ज्वलद्दीपमिवांभोजवासिन्या वासगेहकं ।’ ( १०-१३१ ) । मरुदेवीने चौथे स्वप्नमें अपनी ही शोभाके समान लक्ष्मी देखी । लक्ष्मी कमलमय ऊँचे सिंहासन पर बैठी हुई थी और दो देव-हाथी अपनी सँडमें दबाये हुए स्वर्ण घड़ोंसे उसका अभिषेक कर रहे थे ।—‘पद्मां पद्ममयोचुंगविष्टरे सुरवारणैः । स्नाप्या हिरण्मयैः कुंभैर्दर्शत्स्वमिव श्रियं ।’ ( १२-१०७ ) ।

इस प्रकार अलंकारोंसे ही सचमुचकी एक देवी बनकर उसका निवासस्थान भी हिमवान् पर्वत पर कायम कर दिया है । पर्व ३२ के १२१ वें श्लोकमें लिखा है कि इस पर्वतके मस्तक पर पद्मनामका सरोवर है जिसमें श्रीदेवीका निवास है । यह सरोवर स्वच्छ जल और कमलोंसे सुशोभित है :—

‘मूर्ध्निपद्महृदेऽस्यास्ति धृतश्रीर्बहुवर्षनः ।  
पसन्नवारिरिष्टफुल्लैर्मपंकजमण्डनः ॥

फिर इसी प्रकार छः कुलाचलोंमेंसे एक एक पर कमसे छहों देवियोंका निवास स्थापन कर दिया है और उन्हें जिनमाताकी सेवा करनेवाली बतलाया है :—

कुलाद्रिनिलया देव्यः श्रीहीधीधृतिकीर्तयः ।  
समं लक्ष्म्या षडैताश्च संमता जिनमातृकाः ३८-१२६

इस प्रकार इन देवियोंके निवासस्थान कुलपर्वत स्थिर हो गये और फिर ये निवासस्थान भी अलंकाररूपसे उपयोगमें लाये जाने लगे । देखिए :—

भारतके भुजदण्ड बहुत ही लम्बे थे और उन पर निवास करनेवाली लक्ष्मी उन्हें कुलपर्वत समझकर बहुत सन्तुष्ट रहती थी।— 'बाहुदण्डस्य...। कुलशैलास्थया नूनं तेने लक्ष्मीः परां धृतिं ।' ( १५-१९६ )। बाहुबलिकी गहरी नामि लक्ष्मीके कुलाचलपर्वतस्थ तालावके समान जान पड़ती थी।— 'कुलाद्रिरिव पद्मायाः सेवनीयं महत्सरः ।' ( १६-१८ )।

इस प्रकार सचमुचकी देवियाँ और उनका निवासस्थान स्थापित होकर फिर उनके कामोंका भी वर्णन होने लगा। जैसे कि भगवान्के अभिषेकके समय श्रीआदि देवियाँ पद्मादि सरोवरोंका जल लाई थीं— 'श्रीदेवीभिर्यदानीतं पद्मादिसरसं पयः ।' ( १६-२१२ ) चक्राभिषेक क्रियाके वर्णनमें भी लिखा है कि श्रीआदि देवियाँ अपने अपने नियोगके अनुसार आकर उनकी सेवा करती हैं। इन्हीं छः देवियोंने स्वर्ग लोकसे लाये हुए पवित्र पदार्थोंद्वारा पहले जिन माताका गर्भशोधन किया और फिर वे अनेक प्रकारसे उनकी सेवा करने लगीं।

इस प्रकार न जाने कितने देवी देवताओंका प्रादुर्भाव संस्कृत-साहित्यमें इन अलंकारोंकी ही बदौलत हो गया है और जैनविद्वानोंके काव्यग्रन्थोंके द्वारा वे सब देवी-देवता जैनधर्ममें भी आधुसे हैं, तथा माने पूजे जाने लगे हैं। इस कारण वस्तुस्वभावानुसार सत्य जैनधर्मके ढूँढ़नेवालोंको विचारशक्तिसे काम लेने और परीक्षा-प्रधानी बननेकी बहुत बड़ी आवश्यकता है।

### पुस्तक-परिचय ।

स्वराज्यकी योग्यता। मूल लेखक, बाबू रामानन्द चट्टोपाध्याय एम. ए., अनुवादक, पं० नन्दकिशोर द्विवेदी बी. ए. और प्रकाशक, पं० उदयलाल काशीवाला, व्यवस्थापक हिन्दी गौरव ग्रन्थमाला, हीराबाग, बम्बई। पृष्ठ २२०।

मूल्य सवा रूपया। इस समय सारे देशको स्वराज्यके अभूतपूर्व आन्दोलनसे व्याप्त देखकर कुछ लोगोंने यह कहना शुरू किया है कि भारत अभी स्वराज्यके योग्य ही नहीं है। उसे स्वराज्य दिया जायगा तो अनर्थ हो जायगा। इस अपूर्व पुस्तकमें ऐसे लोगोंकी सारी दलीलोंका बड़ी योग्यतासे खण्डन किया है और भारतकी स्वराज्यकी योग्यताको सिद्ध किया है। मूल पुस्तककी विद्वानोंने एक स्वरसे प्रशंसा की है। पं० उदयलालजीने बड़ा अच्छा किया, जो इस समय हिन्दी भाषाभाषियोंके लिए भी इसे सुलभ कर दिया। इस विषयके प्रेमियोंको इसे अवश्य पढ़ना चाहिए।

२ सद्भिचार-पुस्तकमाला। जैनहितैषीके पाठकोंके सुपरिचित लेखक बाबू दयाचन्द्रजी गोयलीय बी. ए. ने उक्त नामकी पुस्तकमाला निकालनेका प्रारंभ किया है। इसमें आत्मोजति करनेवाले विचारोंकी छोटी छोटी पुस्तकें निकलती हैं। स्थायी ग्राहकोंको सब पुस्तकें पौनी कीमत पर दी जाती हैं। स्थायी ग्राहक बननेकी फीस चार आने है। अब तक पाँच पुस्तकें निकल चुकी हैंः—

- |                               |        |       |     |
|-------------------------------|--------|-------|-----|
| १ शान्तिमार्ग                 | ... .. | मूल्य | ≡)  |
| २ आत्मरहस्य                   | ... .. | "     | ≡)  |
| ३ जैसे चाहो वैसे बन जाओ       | ... .. | "     | ≡)॥ |
| ४ सुख और सफलताके मूल सिद्धांत | ... .. | "     | =)॥ |
| ५ सुखकी प्राप्तिकामार्ग       | ... .. | "     | 1=) |

ये पाँचों पुस्तकें अँगरेजीके सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक लेखक जेम्स एलनकी जुदी जुदी पाँच पुस्तकोंका अनुवाद है। अँगरेजीमें इन सब पुस्तकोंकी बड़ी ख्याति और खप है। मूलकी अपेक्षा इनका मूल्य बहुत ही कम है। विचारशील सज्जनोंको इन्हें अवश्य पढ़ना चाहिए और बाबू साहबका उत्साह बढ़ाना चाहिए। मिलनेका पता— मैनेजर, हिन्दी साहित्यमण्डार, लखनऊ।



मेहरवान साहब, बम्बईका हर किस्मका माल—स्टेशनरी, हेर आइल, इत्र, लवंडर, कोलनवाटर, सब तरहके साबुन, कांच, कितारें, तसबीरें, ग्यास, दवाइयाँ, मोमबत्ती, सोनेचांदीके बटन, घड़ियाँ, मोजा, बुनयाइन, रूमाल, सब तरहका कपड़ा आदि—सस्ता और फायदेसे आर्डर मिलतेही वी. पी. से भेजते हैं। एक बार मँगाकर खातरी कीजिए।

मेसर्स जॉली सीन्डेला एण्ड को० केमिस्ट और कमीशन एजेंट  
तबावाला बिल्डिंग, प्रिंसेस स्ट्रीट, बम्बई.

## साहित्य पत्रिका प्रतिभा ।

( संपादक, श्रीयुत पं० ज्वालादत्त शर्मा )

प्रतिभाका दसवाँ अङ्क शीघ्र प्रकाशित होनेवाला है । यह प्रति अँगरेजी मासके पहले सप्ताहमें प्रकाशित होती है । यदि आप साहित्यसंबन्धी लेख पढ़ना चाहते हैं, तो प्रतिभाके ग्राहक बनिये । प्रतिभामें रसमयी कवितायें और शिक्षाप्रद पर चुभती हुई गल्पें भी प्रकाशित होती हैं । वार्षिक मूल्य २) है । हम इसके विषयमें अधिक न कहकर हिन्दीकी सर्वश्रेष्ठ पत्रिका सरस्वतीकी सम्पत्ति नीचे उद्धृत किये देते हैं:—

“ प्रतिभा—यह एक नई मासिक पत्रिका है । मुरादाबादके लक्ष्मीनारायण प्रेससे निकली है । हिन्दीके प्रसिद्ध लेखक पं० ज्वालादत्तजी शर्मा इसके संपादक हैं । सरस्वतीके पाठक आपसे खूब परिचित हैं । वे जानते होंगे कि शर्माजी सरस, बाणुहाविरा और साथ ही प्रौढ भाषा लिखनेमें कितने पटु हैं । ऐसे सुयोग्य संपादकके तत्वावधानमें आशा है प्रतिभाका उत्तरोत्तर विकास होगा ।

इसका पहला अङ्क अप्रैल १९१० में प्रकाशित हुआ है । उसमें छोटे बड़े १० लेख और ६ कवितायें हैं । साहित्य, शिक्षा, उद्योग धन्धा, विज्ञान, जीवनचरित और आख्यायिका इतने विषयों पर इसमें लेख प्रकाशित हुए हैं । लेखोंके संबन्धमें सामयिकता और रोचकताका बहुत ध्यान रक्खा गया है ।”

पत्रव्यवहार करनेका पता—

मैनेजर ' प्रतिभा ' लक्ष्मीनारायण प्रेस,  
मुरादाबाद ।

## पवित्र-सस्ती-औषधियाँ ।



### नमक सुलेमानी ।

जगत्प्रसिद्ध असली २० वर्षका आजमूदा हा-  
जमेकी अक्सरी दवा । की० ॥) तीन  
सी० १।=)

### धातु संजीवन ।

संपूर्ण धातु विकारको नष्ट कर नया वीर्य  
पैदा होकर शरीर हृष्ट-पुष्ट होजाता है । की० १)

### प्रदरान्तक-चूर्ण ।

स्त्रियोंके श्वेत, लाल आदि प्रदरोंको शर्तिया  
दूर कर ताकत बढ़ाता और गर्भस्थिति करता है  
की० १)

### नयनाभृत-सुरमा ।

सम्पूर्ण विकारोंको दूरकर नेत्रोंकी ज्योति  
बढ़ाता और तरावट पैदा करता है । की० १)

### दन्त-कुसुमाकर ।

दाँतोंके सब रोग दूर होकर दाँतोंकी चमक  
बढ़ाता और मजबूत करता है । की० १)

### दद्दु-दमन ।

यह खुशबूदार मरहम विना कष्टके दादके  
दादाको तगादा कर भगाती है । की० १)

### केश-विहार-तैल ।

अत्यन्त सुगन्धिसे चित्त प्रसन्न कर केश और  
मस्तकके रोगोंको दूर करता है । की० ॥)

### नारायण-तैल ।

शरदी आदिसे उत्पन्न हुए दर्द, गाठिया, प-  
क्षाघात आदि सर्व वात रोगोंकी शर्तिया दवा  
है । की० १)

### दवा सफेद दागोंकी ।

इससे शरीरमें जो सफेद २ दाग पड़जाते  
हैं वह दूर हो जाते हैं । की० १)

### श्वास-कुठार ।

यह श्वास दमेंकी शर्तिया दवा है । की० १)

### गोली दस्तबंदकी ।

रक्त, आम, आदि अतिसार तथा संग्रहणी  
आदिको शीघ्र दूर करती है । की० ॥)

### दवा खांसीकी ।

सूखी या तर खांसीको और कफको दूर क-  
रने वाली आजमूदा दवा है । की० ॥)

### अर्क कपूर ।

हैजेकी अक्सरी दवा । की० १)

### चंद्रकला ।

यह गोरे व खूबसूरतीकी दवा है । की० ॥)

### नैन-सुधा-अञ्जन ।

इससे आँसुका जाला धुन्ध फुली माड़ा आदि  
सब अच्छे होते हैं । की० ॥)

### दवा पेटके दर्दकी ।

चाहे कैसा पेट दर्द हो फौरन दूर होता है ।  
की० ॥)

### ताम्बूल रंजन ।

पानके साथ खानेका बढ़िया मसाला । की० ॥)

शिरदर्द-हर तैल । की० १)

कर्ण-रोग-हर तैल । की० १)

सुजली-नाशक तैल । की० १)

बाल उड़ानेका साबुन । की० १)

काकिल-कण्ठ-बाटिका । की० १)

पता—चन्द्रसेन जैन वैद्य, चन्द्राश्रम, इटावह U. P.

## हमारी ग्रन्थमालाकी नई पुस्तकें ।

**ताराबाई** । यह आपके पूर्वपरिचित स्वर्गीय द्विजेन्द्रलाल रायके बंगला नाटकका अनुवाद है । अभी तक आपने इनके जितने नाटक पढ़े हैं, वे सब गद्यमें थे; पर यह पद्यमें है । अनुवाद भी खड़ी बोलीके तुकान्तर्हान पद्योंमें कराया गया है । अनुवादक हैं—सुकवि पं० रूपनारायण पाण्डेय । हिन्दीमें यह बिलकुल नई चीज है । ऐतिहासिक नाटक है । यह बाँधिया 'इमिटेशन आर्ट' कागज पर छपाया गया है । मूल्य एक रुपया छह आने ।

**देश-दर्शन** । इसके तैयार होनेकी सूचना वर्षोंसे निकल रही है । बड़ी मुश्किलसे यह अब तैयार हुआ है । इसके लेखक ठाकुर शिवनन्दनसिंहजी बी. ए. हैं । अँगरेजोंके पचासों ग्रन्थोंके आधारसे यह लिखा गया है । इसमें देशकी भीतरी दशाओंका आपको दर्शन होगा । यहाँका घोर दरिद्रताका, आयुकी भयंकर घटीका, मृत्युसंख्याका बढ़ती हुई भाषणताका, अल्पजीवी बच्चोंकी अधिक जन्मसंख्याका और इनके साथ बढ़े हुए व्यभिचारका, नशेबाजीका, चरित्रहीनताका वर्णन पढ़कर आप अवाक् हो जायेंगे । शिक्षाका कर्मा, व्यापारकी दुर्दशा, विदेशियोंकी सत्ता, किसानोंकी बुरी हालत, बालविवाह, ब्रह्मविवाह, अयोग्यविवाह, विवाहका इतिहास, उत्तम संतान उत्पन्न करनेके सिद्धान्त, सन्तान कम उत्पन्न करनेकी आवश्यकता आदि और भी अनेक विषयोंके सम्बन्धमें आपको इसमें सैकड़ों नई बातें मालूम होंगी । कई चित्र और नकशे भी इसमें दिये गये हैं । पृष्ठसंख्या पौने पाँचमौके लगभग । मूल्य तीन रुपया ।

**हृदयकी परख** । जो लोग इस बातकी शिकायत करते हैं, कि हिन्दीमें स्वतंत्र उपन्यास नहीं हैं उन्हें इस भावपूर्ण उपन्यासको पढ़कर बहुत सन्तोष होगा । इसके लेखक आयुर्वेदाचार्य पं० चतुरसेन शास्त्री हैं । इस पुस्तकमें हमने एक नामी चित्रकारसे पाँच नवीन चित्र बनवाकर छपवाये हैं, जिससे पुस्तक और भी सुन्दर हो गई है । मूल्य एक रुपया दो आने ।

**नवनिधि** । इस ग्रन्थको उर्दूके प्रसिद्ध गल्पलेखक श्रीयुत प्रेमचदजीने स्वयं अपनी कलमसे हिन्दीमें

लिखा है । इसमें एकसे एक बढ़कर सुन्दर और भावपूर्ण ९ गल्प हैं । इनके जोड़की गल्पें आपने शायद ही कभी पढ़ी हों । मूल्य एक रुपया दो आने ।

**नूरजहाँ** । स्वर्गीय द्विजेन्द्रलाल रायके प्रसिद्ध नाटकका अनुवाद । इसके विषयमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती । शाहजहाँ और नूरजहाँ उनके स्वीथ्रष्ट नाटक गिने जाते हैं । मूल्य एक रुपया दो आने । इसमें कपड़ेकी जिल्द न रहेगी ।

## राष्ट्रीय ग्रन्थ ।

**स्वराज्य** । गुरुकुल काँगड़ीके अर्थशास्त्रके प्रोफेसर श्रियुत बालकृष्ण एम. ए. इसके लेखक हैं । इस विषयका अपने ढंगका यह निराला ही ग्रन्थ है । पृष्ठसंख्या ३०० । मूल्य सवा रुपया आठ आने ।

**अर्थशास्त्र** । अर्थात् धनकी उत्पत्ति तथा वृद्धि । लेखक, उपर्युक्त प्रो० बालकृष्ण एम. ए. पृष्ठसंख्या ५५० । मू० १॥) ।

**पार्लमेण्ट** । लेखक, श्रियुत बालकृष्ण सुपाईवादास गुप्त बी. ए. हिन्दीमें यह इस विषयकी सबसे पहली पुस्तक है । जिस ब्रिटिश पार्लमेण्टके शासनमें हम रहते हैं उसका शुरूसे लेकर अब तकका इतिहास, उसका कमविकास, उसकी शासनपद्धति और उसके गुणदोष आदि बातोंका सूब विस्तारके साथ इसमें निरूपण किया गया है । पृष्ठसंख्या २७५ । मूल्य एक रुपया दो आने । सादीका चौदह आने ।

**महादेव गोविंद रानडे** । लेखक, श्रियुत भारतीय । बम्बई हाईकोर्टके भूतपूर्व जज, प्रसिद्ध सुधारक और देशभक्त महात्माका जीवनचरित । यह अनेक ग्रन्थोंके आधारसे बहुत अच्छे ढंगसे लिखा गया है । पृष्ठसंख्या २०० । मूल्य ॥=)

**देवी जौन** अर्थात् स्वतंत्रताकी मूर्ति । अपने जीवनका बलि देकर फ्रान्सको परार्थीनतासे मुक्त करनेवाली 'जौन आफ आर्क' नामक प्रसिद्ध वीरंगनाका देशभक्तिपूर्ण अपूर्व जीवनचरित ।

लेखिका, श्रीमती बालाजी । पृष्ठसंख्या १०० से ऊपर । मूल्य आठ आने ।

**स्वराज्यकी योग्यता ।** 'माडर्न रिव्यू' के सम्पादक श्रीयुत बाबू रामानन्द चट्टोपाध्यायके लिखे हुए सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'टूवर्ड्स होमरूल' का हिन्दी अनुवाद । (प्रथम भाग ।) इस विषयका यह अद्वितीय ग्रन्थ है । बड़ी ही अकाट्य युक्तियोंसे 'भारत स्वराज्यके योग्य नहीं है' इस प्रवादका खण्डन किया गया है । प्रत्येक दशमकके पढ़नेकी चीज है । पृष्ठसंख्या २२० । मूल्य सवा रुपया ।

**स्वराज्यकी पात्रता ।** मूल्य पाँच आने ।

**राष्ट्रीय शिक्षा ।** मि० अरण्डेलके व्याख्यानका अनुवाद । मू०।

**स्वराज्यकी पात्रताके प्रमाण और मेरे कार्य ।** मूल्य -)॥

देवी वसन्तुका संदेशा -)॥

राष्ट्रनिर्माण -)॥

स्थानिक स्वराज्य -)॥

धर्म और राजनीति -)॥

स्वराज्य क्यों चाहिए -)॥

स्वराज्यविचार ≡)

हिन्दुस्थानकी माँग -)

राष्ट्रीय स्वराज्य -)॥

हमारा भाषण ह्यास, लेखक-पं० मन्नन द्विवेदी बी. ए. मू० ≡)

## अन्यान्य विषयोंके ग्रन्थ ।

**सदाचार-सोपान ।** प्रतिभा, शान्तिकुटीर आदिके लेखक, श्रीयुत बाबू अविनाशचन्द्रदास एम. ए. बी.एल. की बंगलापुस्तकका अनुवाद । बहुत ही अच्छी शिक्षाप्रद पुस्तक है । मूल्य १)।

**राजा और रानी ।** इसमें सम्राट् पंचम जार्ज और महाराणी मेरीके चरित्रसे मिलनेवाली शिक्षाओंपर विचार किया गया है । विद्यार्थियोंके

लिए बहुत ही उपयोगी है । यह गुजरातीके प्रसिद्ध लेखक श्रीयुत अमृतलाल पट्टिधारकी पुस्तकका अनुवाद है । मूल्य छह आने ।

**शाही लकड़हारा ।** उर्दूके सुप्रसिद्ध लेखक लाला शिवव्रतलाल वर्मा एम. ए. की दिलचस्प पुस्तकका हिन्दी अनुवाद । मूल्य एक रुपया ।

**सुख और सफलताके मूल सिद्धान्त ।** सुप्रसिद्ध अंगरेजी लेखक जेम्स एलनकी 'फोन्डेशन स्टोनस टू हेप्पीनेस एण्ड सक्सेस' नामक पुस्तकका अनुवाद । मूल्य ढाई आना ।

**सुखकी प्राप्तिका मार्ग ।** जेम्स एलनकी 'पाथ आफ प्रोस्पेरिटी' का अनुवाद । अनुवादक, बाबू दयाचन्द्र गोयलीय बी. ए. पृष्ठसंख्या ८० । मूल्य १-)

**किशोरावस्था ।** लेखक, श्रीयुत गोपाल शरणसिंह बी. ए. जिन्होंने युवावस्थामें प्रवेश किया है, उन्हें अवश्य पढ़ना चाहिए । बड़ी अच्छी पुस्तक है । मूल्य ॥≡)

**ज्योतिष शास्त्र ।** लेखक, श्रीयुत बाबू दुर्गा-प्रसाद खतान एम. ए. कृत । अनेक चित्रोंसे युक्त । मूल्य दश आने ।

**कर्मक्षेत्र ।** श्रीशाशिमूषणसेनकृत बंगला पुस्तकका हिन्दी अनुवाद । इसमें निरुद्यमी, उत्साहहीन और हतभाग्य भारतवासियोंको उत्साहित करके कर्मवीर बनानेका प्रयत्न किया गया है । भारतवर्षके अनेक महापुरुषोंके चरित्र देकर इन बातोंको पृष्ट किया है । पृष्ठसंख्या २०० । मू० सादीका चौदह आने । सजिल्दक १≡)

मिलनेका पता—

व्यवस्थापक-हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, हरीबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई ।

( इस अंकके निकलनेकी ता. ३-१-१९१८ ई० )